International Journal of Multidisciplinary Research and Growth Evaluation.

1857 का विद्रोह: जनसंचार, लोक स्मृति और सांस्कृतिक प्रतिरोध

[1*] अमर कुमार भारती, [2] प्रोफेसर प्रदीप शुक्ला
[1] शोध छात्र, इतिहास विभाग, गुरु घासीदास विश्वविद्यालय, बिलासपुर, छत्तीसगढ़, भारत
[2] प्रोफेसर, इतिहास विभाग, गुरु घासीदास विश्वविद्यालय, बिलासपुर, छत्तीसगढ़, भारत

* Corresponding Author: **अमर कुमार भारती**

Article Info

ISSN (Online): 2582-7138
Impact Factor (RSIF): 8.04
Volume: 07
Issue: 03
May-June 2026
Received: 19-03-2026
Accepted: 17-04-2026
Published: 15-05-2026
Page No: 511-522

सारांश
1857–58 का भारतीय विद्रोह केवल एक सैन्य या प्रशासनिक विफलता नहीं था, बल्कि यह एक व्यापक वैश्विक मीडिया घटना के रूप में भी सामने आता है। यद्यपि ब्रिटिश सैन्य बल ने उन्हें तात्कालिक विजय दिला दी, किन्तु शासन की वैधता, जन-धारणाओं के निर्माण और दीर्घकालिक स्मृति के गठन में सूचनाओं के आदान-प्रदान और संचार की प्रक्रियाओं ने अत्यंत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। यह शोध-पत्र प्राथमिक समाचार-पत्रों, औपनिवेशिक अभिलेखों, विद्रोही घोषणापत्रों तथा प्रत्यक्षदर्शी साक्ष्यों के आधार पर उन परस्पर प्रतिस्पर्धी कहानियों और दृष्टिकोणों का पुनर्निर्माण करता है, जो विभिन्न स्तरों पर विकसित हुए। विश्लेषण के दायरे में भारतीय स्वामित्व वाले भाषायी समाचार-पत्र, भारत में संचालित ब्रिटिश प्रेस, लंदन का महानगरीय मीडिया, तथा यूरोप, रूस, संयुक्त राज्य अमेरिका, उपनिवेशित आबादी वाले क्षेत्रों और चीन के समाचार माध्यम शामिल हैं। इन विभिन्न स्रोतों में 1857 की घटनाओं को एक साथ कई रूपों में प्रस्तुत किया गया,कहीं इसे "सिपाही विद्रोह" कहा गया, कहीं "स्वतंत्रता संग्राम", कहीं "धार्मिक संघर्ष", तो कहीं साम्राज्यवादी व्यवस्था के लिए एक गंभीर चेतावनी के रूप में देखा गया। इस दृष्टि से 1857 का विद्रोह आधुनिक काल के उन प्रारम्भिक उदाहरणों में से एक है, जहाँ यह स्पष्ट होता है कि साम्राज्य को बनाए रखने के लिए सूचना पर नियंत्रण, सैन्य शक्ति के समानांतर, उतना ही आवश्यक था। वस्तुतः, साम्राज्य केवल हथियारों के बल पर नहीं टिकते; वे इस बात पर भी निर्भर करते हैं कि लोगों के सामने क्या प्रस्तुत किया जाए, वे क्या मानें और अंततः क्या स्मरण रखें।

DOI: https://doi.org/10.54660/.IJMRGE.2026.7.3.511-522

Keywords: 1857 का भारतीय विद्रोह, वैश्विक मीडिया घटना, औपनिवेशिक प्रेस, भाषायी पत्रकारिता, मुद्रण संस्कृति, सेंसरशिप, गैगिंग एक्ट (1857), कथा-आधारित सत्ता, साम्राज्यवादी विमर्श

परिचय
1857 के भारतीय विद्रोह की व्याख्या इतिहासलेखन में विविध रूपों में की गई है, इसे कभी सिपाही विद्रोह, कभी औपनिवेशिक प्रशासन की विफलता, कभी कृषक असंतोष का विस्फोट, तो कभी एक प्रारम्भिक राष्ट्रवादी स्वतंत्रता संग्राम के रूप में देखा गया है। आर. सी. मजूमदार ने इसे एक सीमित और स्थानीय सैन्य विद्रोह माना, जिसमें किसी सुव्यवस्थित वैचारिक आधार का अभाव था [1]। इसके विपरीत, वी. डी. सावरकर ने अपनी 1909 की कृति The Indian War of Independence में इसे स्वतंत्रता के लिए प्रथम संगठित राष्ट्रीय संघर्ष के रूप में प्रस्तुत किया। इस पुस्तक के मराठी संस्करण को प्रकाशन से पूर्व ही ब्रिटिश भारत में प्रतिबंधित कर दिया गया था, यद्यपि इसका डच संस्करण बाद में यूरोप में व्यापक रूप से प्रसारित हुआ [2]।

[1] आर. सी. मजूमदार, The Sepoy Mutiny and the Revolt of 1857 (कलकत्ता, 1957), पृ. 45-50.
[2] वी. डी. सावरकर, The Indian War of Independence of 1857 (1909; पुनर्मुद्रण, मुंबई, 1947), पृ. 1-5.

एस. एन. सेन ने इस उभार को सैनिक विद्रोह और जन-आन्दोलन के सम्मिश्रण के रूप में समझा [3]। वहीं, 1858 में New York Daily Tribune में लिखते हुए कार्ल मार्क्स ने इसे ब्रिटिश औपनिवेशिक शोषण के विरुद्ध एक राष्ट्रीय विद्रोह की संज्ञा दी [4]।

यह शोध-पत्र "विद्रोह बनाम स्वतंत्रता संग्राम" की पारंपरिक द्वंद्वात्मक बहस से आगे बढ़ते हुए 1857 को मीडिया-इतिहास के परिप्रेक्ष्य में स्थापित करता है। यहाँ 1857 को एक वैश्विक मीडिया घटना के रूप में देखा गया है, जिसमें परस्पर प्रतिस्पर्धी कथाओं के माध्यम से वैधता, हिंसा और संप्रभुता को परिभाषित करने का संघर्ष चल रहा था। इस अध्ययन का केन्द्रीय तर्क यह है कि विद्रोह की व्याख्या, उसका सुदृढ़ीकरण और उसकी ऐतिहासिक स्मृति केवल युद्धक्षेत्र की घटनाओं से निर्मित नहीं हुई, बल्कि वह उतनी ही गहराई से उन प्रतिनिधित्वों और विमर्शों से भी आकार ग्रहण करती है, जो विभिन्न माध्यमों के जरिए प्रसारित हुए। यद्यपि यह अध्ययन इस बहस का अंतिम समाधान प्रस्तुत करने का दावा नहीं करता, फिर भी यह स्पष्ट संकेत देता है कि अब तक का इतिहासलेखन इस विद्रोह के सूचनात्मक आयाम की पर्याप्त उपेक्षा करता रहा है। इसी पृष्ठभूमि में यह शोध-पत्र इस उपेक्षित आयाम को केंद्र में रखते हुए यह प्रतिपादित करता है कि संचार के ढाँचे, विमर्श-निर्माण की प्रक्रियाएँ और अभिलेखीय प्रथाएँ इस विद्रोह के लिए गौण नहीं थीं; बल्कि वे इसकी व्याख्या, सुदृढ़ीकरण और स्मृति-निर्माण की आधारभूत शक्तियाँ थीं।

"वैश्विक मीडिया घटना" की अवधारणा

1857 को वैश्विक मीडिया घटना के रूप में समझने के लिए तीन प्रमुख विशेषताओं पर ध्यान देना आवश्यक है। पहली, समकालिकता,अर्थात् घटनाओं से संबंधित समाचार कुछ ही सप्ताहों के भीतर विभिन्न महाद्वीपों तक पहुँच गए। दूसरी, पार-राष्ट्रीय प्रसार जहाँ समाचारों को सीमाओं के पार पुनर्मुद्रित किया गया और नए संदर्भों में पुनर्व्याख्यायित किया गया। तीसरी, प्रतिस्पर्धी कथा-ढाँचेजिसके अंतर्गत एक ही घटना को पर्यवेक्षक की भौगोलिक और वैचारिक स्थिति के आधार पर विद्रोह, क्रांति या धार्मिक युद्ध के रूप में अलग-अलग अर्थ दिए गए। इस दृष्टि से, 1857 का विद्रोह केवल युद्धक्षेत्र तक सीमित घटना नहीं था; यह उस व्यापक सामाजिक-वैचारिक क्षेत्र में भी घटित हुआ जिसे जुर्गन हैबरमास ने "सार्वजनिक क्षेत्र" कहा है,. एक ऐसा क्षेत्र जहाँ नागरिक जनमत के निर्माण में भाग लेते हैं। हालांकि, औपनिवेशिक संदर्भ में यह सार्वजनिक क्षेत्र स्वायत्त नहीं था; यह सत्ता-संबंधों द्वारा गहराई से प्रभावित, खंडित और असमान रूप से संरचित था [5]।

कार्यप्रणाली और स्रोत-चयन

यह अध्ययन चयनित समाचार-पत्रों की रिपोर्टों, औपनिवेशिक अभिलेखों तथा विद्रोही दस्तावेज़ों के सूक्ष्म पाठ्य-विश्लेषण पर आधारित है। कार्यप्रणाली के स्तर पर, इसमें मुद्रित स्रोतों के विमर्श-विश्लेषण को पार-राष्ट्रीय मीडिया प्रसार के अध्ययन के साथ संयोजित किया गया है। समाचार-पत्रों का चयन उनके भौगोलिक विस्तार, भाषाई स्वरूप और अभिलेखीय साक्ष्यों में दर्ज प्रभाव के आधार पर किया गया है। विश्लेषण का उद्देश्य यह समझना है कि घटनाओं को समाचार के रूप में किस प्रकार ढाला गया, पीड़ितों और अपराधियों की छवियाँ कैसे निर्मित हुईं, तथा संपादकीय हस्तक्षेपों के माध्यम से कारण-परिणाम संबंधों की व्याख्या कैसे गढ़ी गई। गैर-अंग्रेज़ी स्रोतों के उपयोग में अनुवाद जनित पूर्वाग्रहों की संभावना को भी ध्यान में रखा गया है, क्योंकि अधिकांश स्रोत औपनिवेशिक कालीन अनुवादों के माध्यम से उपलब्ध हैं। यहाँ प्रभाव को पाठकों की संख्या के बजाय पुनरावृत्ति, प्राधिकार और संचार-जाल में किसी माध्यम की स्थिति के आधार पर समझा गया है। विमर्श-विश्लेषण इस संदर्भ में विशेष रूप से उपयोगी सिद्ध होता है, क्योंकि यह यह स्पष्ट करता है कि भाषा किस प्रकार वैधता का निर्माण करती है और किस प्रकार हिंसात्मक घटनाएँ, अपने प्रस्तुतीकरण के आधार पर, "विद्रोह" या "स्वतंत्रता संग्राम" जैसे भिन्न अर्थ ग्रहण कर लेती हैं।

मात्रात्मक संदर्भ और उसकी व्याख्यात्मक सीमाएँ

यद्यपि उपलब्ध आँकड़े पूर्णतः सटीक नहीं हैं, फिर भी वे उस समय के प्रेस के प्रभाव को समझने में सहायक संकेत प्रदान करते हैं। उदाहरणतः, बॉम्बे टाइम्स जैसे प्रमुख एंग्लो-इंडियन समाचार-पत्रों का प्रसार प्रति अंक लगभग 2,000 से 5,000 प्रतियों के बीच था, जबकि 1850 के दशक के उत्तरार्ध तक द टाइम्स की पहुँच 40,000 से अधिक प्रतियों तक हो चुकी थी। इसके विपरीत, भाषायी समाचार-पत्रों का प्रसार अपेक्षाकृत सीमित थाअक्सर कुछ सौ से लेकर कुछ हज़ार प्रतियों तक। तथापि, उनका प्रभाव केवल मुद्रित प्रतियों तक सीमित नहीं था। सामूहिक वाचन, सार्वजनिक पाठ और मौखिक संचार की परंपराओं के कारण इनकी वास्तविक पहुँच कहीं अधिक व्यापक हो जाती थी। बाज़ारों में सार्वजनिक पाठ तथा घुमंतू साधुओं और कथावाचकों के माध्यम से इन पत्रों की सामग्री बड़े समूहों तक पहुँचती थी, जिससे प्रति पाठक संदेश का प्रभाव अत्यधिक सघन हो जाता था। औपनिवेशिक खुफिया अभिलेखों में संकलित नेटिव न्यूज़पेपर रिपोर्ट्स के प्रारम्भिक अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि इन पत्रों में तीन प्रमुख विषयगत प्रवृत्तियाँ बार-बार उभरती हैंधार्मिक विमर्श, निष्ठा की कहानियाँ, और अत्याचार से संबंधित विवरण। इन तथ्यों से एक महत्वपूर्ण निष्कर्ष सामने आता है: किसी समाचार-पत्र का प्रभाव उसकी मुद्रित प्रतियों की संख्या से निर्धारित नहीं होता, बल्कि इस बात से निर्धारित होता है कि वह मौखिक संचार के किन केन्द्रों से जुड़ा है और व्यापक साम्राज्यवादी संचार-परिपथों में उसकी स्थिति कितनी रणनीतिक है।

प्रेस नेटवर्क	अनुमानित प्रसार	प्राथमिक भाषा	प्रवर्धन का तंत्र
ब्रिटिश महानगरीय (जैसे, The Times)	~40,000+	अंग्रेज़ी	वैश्विक पुनर्मुद्रण; साम्राज्यवादी संचार-परिपथ
एंग्लो-इंडियन (जैसे, Bombay Times)	2,000–5,000	अंग्रेज़ी	औपनिवेशिक नेटवर्क; स्टीमर संस्करण
भाषायी क्रान्तिकारी प्रेस	कुछ सौ–2,000	उर्दू, हिन्दी, फ़ारसी	मौखिक प्रसार; सार्वजनिक वाचन; सामुदायिक नेटवर्क

सैद्धान्तिक ढाँचा

यह शोध-पत्र मिशेल फूको की 'सत्ता-ज्ञान' अवधारणा से प्रेरित विमर्श-विश्लेषण की पद्धति का उपयोग करता है [6]। साथ ही, बेनेडिक्ट एंडरसन के विचारों का अनुसरण करते हुए यह

[3] एस. एन. सेन, Eighteen Fifty-Seven (नई दिल्ली, 1957), पृ. 10-12.

[4] कार्ल मार्क्स, "The Revolt in India," New York Daily Tribune, 31 जुलाई 1857.

[5] जुर्गन हैबरमास, The Structural Transformation of the Public Sphere, अनु. थॉमस बर्गर (कैम्ब्रिज, एमए: MIT प्रेस, 1989), पृ. 1-10.

[6] मिशेल फूको, Power/Knowledge: Selected Interviews and Other Writings, 1972-1977, संपा. कॉलिन गॉर्डन (न्यूयॉर्क: पैंथियन बुक्स, 1980), पृ. 109-133.

औपनिवेशिक और साम्राज्यवादी संदर्भों में 'कल्पित समुदायों' के निर्माण में समाचार-पत्रों की केन्द्रीय भूमिका को रेखांकित करता है [7]। ब्रिटिश प्रेस ने एक प्रकार की 'सत्य-व्यवस्था' का निर्माण किया, जिसके भीतर 1857 की घटनाओं को केवल एक 'सिपाही विद्रोह' या 'म्यूटिनी' के रूप में समझा जा सकता था। उदाहरण के लिए, द टाइम्स ने कानपुर की घटनाओं को पूर्णतः बर्बरता के रूप में चित्रित किया, जबकि विद्रोहियों द्वारा व्यक्त राजनीतिक असंतोष और शिकायतों को व्यवस्थित रूप से हाशिए पर डाल दिया गया। इस प्रकार, प्रेस ने केवल घटनाओं का विवरण ही नहीं दिया, बल्कि उनके अर्थ-निर्माण को भी नियंत्रित किया। एंडरसन की 'मुद्रण-राष्ट्रवाद' की अवधारणा इस असमानता को समझने में विशेष रूप से सहायक सिद्ध होती है।

जहाँ एक ओर साम्राज्यवादी मुद्रण नेटवर्क ने एक सुसंगत और व्यापक ब्रिटिश साम्राज्यवादी कल्पना का निर्माण किया, वहीं दूसरी ओर भाषायी प्रेस नेअपने सीमित और खंडित स्वरूप के बावजूदस्थानीय स्तर पर ऐसी सामूहिक एकजुटताएँ निर्मित कीं, जिन्हें औपनिवेशिक राज्य तब तक पूरी तरह समझ नहीं पाया, जब तक वे मुद्रित रूप में व्यापक रूप से सामने नहीं आ गईं। यह भी ध्यान देने योग्य है कि यह अध्ययन भाषायी स्रोतों की असमान उपलब्धता से सीमित है, क्योंकि ऐसे अनेक स्रोत या तो दमन का शिकार हुए या नष्ट कर दिए गए। परिणामस्वरूप, उपलब्ध अभिलेखीय सामग्री स्वाभाविक रूप से औपनिवेशिक दृष्टिकोण की ओर झुकी हुई है। इस संरचनात्मक पूर्वाग्रह को कम करने के लिए इस शोध-पत्र में अनूदित अंशों तथा खुफिया प्रतिवेदनों का सावधानीपूर्वक और आलोचनात्मक अध्ययन किया गया है।

सूचनात्मक सत्ता का त्रिस्तरीय मॉडल (1857 का विश्लेषणात्मक ढाँचा)

यह अध्ययन सूचनात्मक सत्ता को तीन परस्पर सम्बद्ध स्तरों के माध्यम से समझने का प्रयास करता है:

1. ढाँचा (गति): टेलीग्राफ और भाप-पोत जैसे संचार माध्यमों ने सूचना के प्रसार की गति और उसके अनुक्रम को निर्धारित किया।
2. माध्यम (रूपांकन): समाचार-पत्रों, घोषणापत्रों और दृश्य माध्यमों ने घटनाओं को विशिष्ट अर्थ प्रदान किए, साथ ही दोष-निर्धारण और वैधता के निर्माण में भूमिका निभाई।
3. स्मृति (विरासत): इतिहासलेखन और अभिलेखीय संरक्षण की प्रक्रियाओं ने यह सुनिश्चित किया कि किन कहानियों को दीर्घकालिक स्मृति में स्थान मिलेगा।

इन तीनों स्तरों के संयुक्त प्रभाव से सूचनात्मक सत्ता का एक त्रिस्तरीय मॉडल निर्मित होता है, जिसके माध्यम से 1857 के विद्रोह को न केवल लड़ा गया, बल्कि उसकी व्याख्या की गई और उसे स्मृति में भी स्थापित किया गया।

प्रति-तर्क और उसकी सीमाएँ

यह तर्क प्रस्तुत किया जा सकता है कि 1857 के विद्रोह का दमन मुख्यतः सैन्य शक्ति के कारण संभव हुआ, न कि विमर्शात्मक प्रक्रियाओं के कारण। निस्संदेह, ब्रिटिशों के पास बेहतर हथियार, सुदृढ़ रसद-व्यवस्था और अधिक अनुशासित सेना थी। इन भौतिक कारकों की उपेक्षा नहीं की जा सकती। फिर भी, केवल सैन्य वर्चस्व यह स्पष्ट नहीं करता कि इस संघर्ष को इतिहास में 'युद्ध' के बजाय 'सिपाही विद्रोह' के रूप में क्यों स्थापित किया गया; न ही यह समझाता है कि अनेक भारतीय रियासतें ब्रिटिशों के प्रति वफादार क्यों बनी रहीं, अथवा आगामी पीढ़ियों ने औपनिवेशिक शासन को वैध क्यों स्वीकार किया। युद्ध की समाप्ति के पश्चात् मुकदमों, आधिकारिक इतिहास-लेखन और स्मृति-समारोहों पर नियंत्रण के माध्यम से कहानियों को इस प्रकार गढ़ा गया कि वे औपनिवेशिक सत्ता के अनुकूल हों। हैदराबाद और ग्वालियर जैसी रियासतों की निष्ठा केवल सैन्य दबाव का परिणाम नहीं थी, बल्कि उन्हें प्रदान किए गए विशेषाधिकारों के आश्वासनों का भी प्रभाव था, जिन्हें राजपत्रों और आधिकारिक घोषणाओं के माध्यम से निरन्तर संप्रेषित किया जाता रहा। इस प्रकार, यह कहा जा सकता है कि कथा-नियंत्रण ने युद्ध स्वयं नहीं जीता, किन्तु उसने सैन्य विजय को स्थायित्व प्रदान करने और नई राजनीतिक व्यवस्था को वैध ठहराने में निर्णायक भूमिका निभाई। वस्तुतः, सैन्य शक्ति और विमर्शदोनों ने मिलकर ही औपनिवेशिक प्रभुत्व को सुदृढ़ किया।

1. विद्रोह का आरम्भ: प्रारम्भिक प्रतिस्पर्धी कथाएँ

10 मई 1857 को मेरठ में विद्रोह की शुरुआत हुई। कुछ ही घंटों के भीतर इस घटना की व्याख्या को लेकर दो परस्पर विरोधी कहानियाँ उभर आईंएक ब्रिटिश सैन्य नेतृत्व की ओर से और दूसरी भारतीय प्रतिभागियों तथा प्रत्यक्षदर्शियों के अनुभवों पर आधारित।

ब्रिटिश आधिकारिक कथा: मेरठ डिवीजन के कमांडिंग अधिकारी मेजर-जनरल डब्ल्यू. एच. हेविट ने 11 मई 1857 को एडजुटेंट-जनरल को भेजी अपनी रिपोर्ट में लिखा:

"मुझे खेद के साथ सूचित करना पड़ रहा है कि मेरठ में कल सायंकाल देशी सैनिकों ने खुला विद्रोह कर दिया है... 20वीं नेटिव इन्फैंट्री हथियारों के साथ बाहर निकल आई है... अत्यंत दुख के साथ कहना पड़ रहा है कि कर्नल फिन को गोली मार दी गई... इसके बाद विद्रोहियों ने बाज़ार, शहर और आस-पास के गाँवों के लोगों की सहायता से अधिकांश बँगलों को आग के हवाले कर दिया... विद्युत (टेलीग्राफ) तार के नष्ट हो जाने के कारण संचार स्थापित करना असंभव हो गया है [8]।"

यह विवरण पूरे घटनाक्रम को एक सैन्य अनुशासनहीनता के रूप में प्रस्तुत करता है। टेलीग्राफ तारों के विनाश को केवल एक सामरिक व्यवधान के रूप में दर्ज किया गया है, न कि किसी प्रतीकात्मक या राजनीतिक कृत्य के रूप में। यही आधिकारिक दृष्टिकोण आगे चलकर ब्रिटिश प्रेस के लिए एक मानक ढाँचा बन गया, जिसके भीतर विद्रोह के राजनीतिक और धार्मिक आयामों को व्यवस्थित रूप से हाशिए पर डाल दिया गया।

भारतीय प्रत्यक्षदर्शी कथा: इसके विपरीत, भारतीय प्रत्यक्षदर्शियों के विवरण एक भिन्न ही परिप्रेक्ष्य प्रस्तुत करते हैं। 1858 में सम्राट बहादुर शाह द्वितीय के मुकदमे के दौरान, गुलाब नामक एक संदेशवाहक ने दिल्ली के भीतर की घटनाओं का वर्णन करते हुए कहा:

"11 मई की सुबह... एक हिंदू सिपाही ने बताया कि मेरठ में देशी सेना ने राज्य के विरुद्ध बगावत कर दी है... और यह भी कहा कि अब वे कंपनी की सेवा नहीं करेंगे, बल्कि अपने धर्म के लिए लड़ेंगे... बादशाह ने कहा'देखो! घुड़सवार सेना आ रही है।'... सवारों ने ' दुहाई बादशाह' पुकारते हुए कहा'हम धर्म की इस लड़ाई में आपकी सहायता चाहते हैं [9]।'"

गुलाब की गवाही उन दो महत्त्वपूर्ण तत्वों को सामने लाती है जो हेविट की रिपोर्ट में पूरी तरह अनुपस्थित थेपहला, धार्मिक प्रेरणा

[7] बेनेडिक्ट एंडरसन, Imagined Communities: Reflections on the Origin and Spread of Nationalism, संशोधित संस्करण (लंदन: वर्सो, 2006), पृ. 37-46.

[8] मेजर-जनरल डब्ल्यू. एच. हेविट, एडजुटेंट-जनरल को पत्र, 11 मई 1857, NAI, गृह विभाग रिकॉर्ड।

[9] गुलाब की गवाही, बहादुर शाह द्वितीय का मुकदमा, 1858, NAI।

और दूसरा, मुग़ल संप्रभुता की पुनर्स्थापना की आकांक्षा । इससे स्पष्ट होता है कि आरम्भ से ही भारतीय प्रतिभागियों ने इस विद्रोह को केवल सैन्य अनुशासनहीनता के रूप में नहीं, बल्कि एक व्यापक धार्मिक और राजनीतिक संघर्ष के रूप में देखा।

घोषणापत्र और एकता का विमर्श

अवध क्षेत्र में हिन्दी, उर्दू और फ़ारसी में बहुभाषी घोषणापत्र जारी किए गए, जिनमें हिन्दू-मुस्लिम एकता का आह्वान करते हुए यूरोपीय शासन के विरुद्ध संघर्ष का संदेश दिया गया। इन घोषणाओं में सक्रिय भागीदारी को नैतिक दायित्व के रूप में प्रस्तुत किया गया, जबकि निष्क्रियता को कठोर शब्दों में निंदित किया गया। एक समकालीन ब्रिटिश पर्यवेक्षक ने इन घोषणाओं को "समाज के नीच तबके" की हरकत बताकर खारिज कर दिया [10]। यह प्रतिक्रिया औपनिवेशिक दृष्टिकोण की उस प्रवृत्ति को दर्शाती है, जिसमें भारतीयों की राजनीतिक चेतना और सामूहिक कार्रवाई की क्षमता को व्यवस्थित रूप से नकारा जाता था। इस प्रकार का निराकरण स्वयं एक विमर्शात्मक रणनीति थी, जिसे आगे चलकर प्रेस ने और अधिक सुदृढ़ किया।

बहादुर शाह ज़फ़र का ईद घोषणापत्र (1857)

विद्रोह के दौरान मुग़ल सम्राट बहादुर शाह ज़फ़र द्वारा जारी घोषणाएँ भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण थीं। फ़ारसी-उर्दू समाचार-पत्र सादिक-उल-अख़बार के माध्यम से प्रसारित एक संदेश में उन्होंने ईद-उल-अज़हा के अवसर पर पारंपरिक बलि के स्थान पर अंग्रेज़ों के विरुद्ध संयुक्त संघर्ष को प्राथमिकता देने का आह्वान किया। इस उद्घोषणा में हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच एकता स्थापित कर औपनिवेशिक सत्ता के विरुद्ध संघर्ष करने की अपील की गई थी [11]। यह दस्तावेज़ इस बात का सशक्त प्रमाण है कि विद्रोही नेतृत्व मुद्रित माध्यमों का उपयोग करते हुए एक अंतर-धार्मिक, औपनिवेशिक-विरोधी वैचारिक आधार निर्मित करने का प्रयास कर रहा था।

खंड का निष्कर्ष

विद्रोह के आरम्भिक क्षणों से ही उसकी व्याख्या को लेकर दो ऐसी कहानियाँ आमने-सामने थीं, जिनमें सामंजस्य स्थापित करना संभव नहीं था। ब्रिटिश पक्ष ने इसे अनुशासनहीनता और अराजकता के रूप में प्रस्तुत किया, जबकि भारतीय प्रत्यक्षदर्शियों और घोषणाओं ने इसे धार्मिक कर्तव्य, राजनीतिक संप्रभुता और सामाजिक एकता से जोड़कर देखा। आगे चलकर यही प्रतिस्पर्धी कहानियाँ उस व्यापक मीडिया संघर्ष का आधार बनीं, जिसने यह निर्धारित किया कि अंततः इतिहास में 1857 को किस रूप में स्मरण किया जाएगा।

2. 1857 से पूर्व भारतीय प्रेस: मेटकाफ की 'मुक्ति' से गैगिंग एक्ट तक

1857 से पूर्व भारतीय पत्रकारिता का स्वरूप स्वतंत्रता और नियंत्रण के बीच निरंतर झूलता रहा। 1780 में जे. ए. हिक्की द्वारा प्रारम्भ किया गया द बंगाल गजट भारत का पहला समाचार-पत्र माना जाता है। हिक्की पर आपराधिक मानहानि का मुकदमा चलाया गया, उनके प्रेस को न्यायालय के आदेश से जब्त कर लिया गया और उन्हें कारावास भी भुगतना पड़ायद्यपि उन्हें औपचारिक रूप से निर्वासित नहीं किया गया [12]। इसके पश्चात् 1799 का सेंसरशिप ऑफ प्रेस एक्ट, 1823 का लाइसेंसिंग एक्ट और 1835 का प्रेस एक्ट जैसे विधायी उपायों के माध्यम से औपनिवेशिक शासन ने मुद्रण और प्रकाशन पर नियंत्रण स्थापित करने का प्रयास किया। चार्ल्स मेटकाफ द्वारा 1835 में लागू किए गए प्रेस अधिनियम ने लाइसेंसिंग व्यवस्था में ढील दी, जिसके कारण उन्हें "भारतीय प्रेस का मुक्तिदाता" कहा गया [13]। 1857 तक आते-आते भारतीय प्रेस ने अपेक्षाकृत अधिक स्वतंत्र वातावरण का अनुभव करना शुरू कर दिया था। इस काल के समाचार-पत्र विविध स्वरूप के थेकुछ ईस्ट इंडिया कंपनी के समर्थन में थे, कुछ राजा राममोहन राय जैसे विचारकों से प्रेरित सुधारवादी दृष्टिकोण प्रस्तुत करते थे, कुछ रियासती संरक्षकों द्वारा वित्तपोषित थे, जबकि दिल्ली, आगरा, लखनऊ और बनारस से फ़ारसी एवं उर्दू में प्रकाशित होने वाले पत्र भी सक्रिय थे [14]। इस प्रकार, 1857 से पूर्व भारतीय प्रेस एक बहुआयामी और वैचारिक रूप से विविध क्षेत्र के रूप में विकसित हो चुका था।

हिन्दी पत्रकारिता का उदय

हिन्दी पत्रकारिता का प्रारम्भ उदन्त मार्तण्ड ("उगता सूरज") के प्रकाशन से हुआ, जिसे 30 मई 1826 को कलकत्ता से पंडित जुगल किशोर शुक्ल ने आरम्भ किया। देवनागरी लिपि में प्रकाशित इस पत्र में स्थानीय समाचार, सरकारी नीतियाँ, बाज़ार की स्थितियाँ तथा सामाजिक असमानताओं जैसे विषयों को स्थान दिया जाता था। यद्यपि सीमित पाठक-वर्ग और उच्च डाक-व्यय के कारण यह पत्र अल्पकाल में ही बंद हो गया, फिर भी इसने आगे चलकर बंगदूत (1829), साम्यदण्ड मार्तण्ड (1852) और प्रथम हिन्दी दैनिक समाचार सुधावर्षण (1854) जैसे प्रकाशनों के लिए आधार तैयार किया [15]। फ़ारसी और उर्दू के समकालीन समाचार पत्रों के साथ मिलकर इन हिन्दी प्रकाशनों ने एक ऐसी बहुभाषी मुद्रण-संरचना का निर्माण किया, जिसकी निगरानी औपनिवेशिक शासन के लिए सरल नहीं थी। यह भाषायी विविधता औपनिवेशिक नियंत्रण की सीमाओं को उजागर करती थी।

विद्रोह और सूचना-व्यवस्था का विघटन

मई 1857 में विद्रोह के भड़कने के साथ ही औपनिवेशिक सूचना-व्यवस्था गंभीर रूप से प्रभावित हुई। सिपाहियों द्वारा टेलीग्राफ लाइनों को काट दिया गया और अनेक प्रशासनिक अधिकारियों की हत्या कर दी गई, जिसके परिणामस्वरूप संचार-तंत्र लगभग ठप हो गया। इस संचार-शून्य को शीघ्र ही वैकल्पिक माध्यमों ने भर दियाजैसे घोषणापत्र, अफवाहें, फतवे और विभिन्न प्रकार की अपीलें [16]। इन माध्यमों ने न केवल सूचना का प्रसार किया, बल्कि विद्रोह के पक्ष में जनमत निर्माण में भी सक्रिय भूमिका निभाई।

गैगिंग एक्ट: औपनिवेशिक प्रतिक्रिया

इस परिस्थिति के प्रति औपनिवेशिक शासन की प्रतिक्रिया अत्यंत त्वरित और कठोर थी। 13 जून 1857 को प्रेस एक्ट संख्या XV, जिसे सामान्यतः "गैगिंग एक्ट" कहा जाता है, लागू किया गया। इस अधिनियम के अंतर्गत: सभी प्रेसों के लिए लाइसेंस प्राप्त करना अनिवार्य कर दिया गया, जिसे प्रशासन कभी भी रद्द कर सकता था; सरकार को पुस्तकों और प्रकाशनों पर प्रतिबंध लगाने का अधिकार प्रदान किया गया; तथा ऐसे समाचार-पत्रों को आर्थिक रूप से दंडित करने की व्यवस्था की गई, जिन्हें सरकार अनुचित मानती थी। इसके

[10] के, जे. डब्ल्यू., Sepoy War in India (लंदन, 1876), पृ. 180-81.

[11] सादिक-उल-अख़बार, ईद उद्घोषणा, 1857, सप्रे संग्रहालय, भोपाल।

[12] द बंगाल गजट, 1780, ब्रिटिश लाइब्रेरी, IOR.

[13] चार्ल्स मेटकाफ, मिनट ऑन प्रेस, 1835, NAI।

[14] उदन्त मार्तण्ड, 30 मई 1826।

[15] बंगदूत, 1829; साम्यदण्ड मार्तण्ड, 1852; समाचार सुधावर्षण, 1854।

[16] पंजाब म्यूटिनी रिपोर्ट (लाहौर, 1858)।

अतिरिक्त, पत्रकारों को प्रताड़ित किया गया, उन पर शारीरिक हिंसा की गई और अनेक को कारावास में डाल दिया गया [17]। इस प्रकार, अपेक्षाकृत उदार प्रेस-व्यवस्था से कठोर सेंसरशिप की ओर यह संक्रमण इस तथ्य को रेखांकित करता है कि औपनिवेशिक शासन के लिए सूचना स्वयं एक राजनीतिक शक्ति बन चुकी थीएक ऐसी शक्ति, जो विद्रोह को जन्म दे सकती थी और उसे विस्तार भी दे सकती थी।

3. भारतीय स्वामित्व वाले समाचार-पत्र: विद्रोह की अभिव्यक्ति

प्रकार	भूमिका	उदाहरण
क्रान्तिकारी प्रेस	प्रत्यक्ष रूप से सशस्त्र प्रतिरोध का आह्वान; औपनिवेशिक शासन के विरुद्ध जन-संगठन एवं भावनात्मक उभार	पयाम-ए-आज़ादी; दिल्ली उर्दू अख़बार; सुदर्शन समाचार; सिराज-उल-अख़बार
सुधारवादी प्रेस	संवैधानिक ढाँचे के भीतर आलोचनात्मक हस्तक्षेप; प्रशासनिक नीतियों की विवेचना एवं सुधार की मांग	The Hindu Patriot; बंगाल हुरकारू (Bengal Hurkaru); इंडियन मिरर (Indian Mirror)
वफादार प्रेस	ब्रिटिश शासन के प्रति समर्थन; औपनिवेशिक दृष्टिकोण का प्रसार एवं विद्रोह की आलोचना	The Times (लंदन); बॉम्बे टाइम्स (Bombay Times); Friend of India

(क) भाषायी क्रान्तिकारी प्रेस

पयाम-ए-आज़ादी हिन्दी और उर्दू में प्रकाशित एक दैनिक समाचार-पत्र था, जिसे अज़ीमुल्लाह ख़ान द्वारा संचालित किया जाता था और बहादुर शाह ज़फ़र के पोते मिर्ज़ा बेदार बख़्त इसके संपादक थे। इसका प्रकाशन फरवरी 1857 में दिल्ली से प्रारम्भ हुआ और बाद में यह झाँसी से भी निकला [18]। इस पत्र ने हिन्दू-मुस्लिम एकता का स्पष्ट और उग्र आह्वान किया:

"हे हिंदुओं और मुसलमानों! एक होकर उठो... ऐसे शासन के अधीन रहना गुलामी है; उसका विरोध करना ईश्वर की आज्ञा का पालन है। [19]"

इस प्रकार की सामग्री को औपनिवेशिक शासन ने राजद्रोह माना और पत्र को प्रतिबंधित कर दिया। इसकी प्रतियाँ रखने मात्र से लोगों को दंडित किया जाता था। आज इसकी उपलब्ध प्रतियाँ मुख्यतः ब्रिटिश लाइब्रेरी में संरक्षित हैं [20]।

दिल्ली उर्दू अख़बार, जिसकी स्थापना 1836–37 के आसपास हुई थी, दिल्ली का पहला उर्दू साप्ताहिक था। प्रारम्भिक चरण में यह मुग़ल दरबार की गतिविधियों (जैसे "हुज़ूर-ए-वाला" स्तम्भ), मौसम, पुलिस कार्रवाइयों तथा मुहर्रम और फूलवालों की सैर जैसे सांस्कृतिक आयोजनों का विवरण प्रस्तुत करता था [21]। इसके साथ ही यह औपनिवेशिक नीतियों पर उभरती सार्वजनिक बहसों में भी सक्रिय थाविशेषतः भारतीय अभिजात वर्ग के निम्न वेतन और बढ़ते करों की आलोचना के रूप में। इसने दिल्ली कॉलेज में अंग्रेज़ी के स्थान पर स्थानीय भाषाओं में शिक्षा के समर्थन का भी पक्ष लिया, जो एक विकसित होती राष्ट्रवादी चेतना का संकेत था [22]।

विद्रोह के दौरान इस पत्र का स्वर निर्णायक रूप से बदल गया। मई 1857 में इसने मोहम्मद हुसैन आज़ाद की एक कविता प्रकाशित की, जिसमें औपनिवेशिक सत्ता के पतन की कल्पना व्यक्त की गई:

"अभी कल तक ईसाई विजेता थे और विश्व पर अधिकार रखते थे, किन्तु आज उनकी बुद्धि विचलित है और उनकी विजयी सेना निष्प्रभावी सिद्ध हो रही है [23]।"

12 जुलाई 1857 को इसके संपादक मौलवी मुहम्मद बाक़र ने मुग़ल सम्राट के प्रति समर्थन व्यक्त करते हुए इसका नाम बदलकर अख़बार-उज़-ज़फ़र कर दिया [24]। जून 1857 के अंक में सिपाहियों से सांप्रदायिक सद्भाव बनाए रखने का आह्वान करते हुए उन्हें "सिपाह-ए-हिंदोस्तान" और जनता को "अज़ीज़ हम-वतन" संबोधित किया गया [25]। बाक़र ने शेख सादी के प्रसिद्ध कथन को उद्धृत करते हुए मानवीय एकता पर बल दिया:

"आदम की संतानें एक-दूसरे के अंग हैं... यदि एक अंग पीड़ित होता है, तो दूसरा चैन से नहीं रह सकता [26]।"

16 सितंबर 1857 को मेजर विलियम हडसन ने मौलवी बाक़र को बिना मुकदमे के गोली मार दी। वे भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में शहीद होने वाले प्रथम पत्रकारों में गिने जाते हैं [27]।

अन्य भाषायी पत्रों ने भी विद्रोही दृष्टिकोण को स्वर दिया। मेरठ से प्रकाशित जाम-ए-जमशेद ने ब्रिटिश अत्याचारों की रिपोर्टिंग भारतीय दृष्टि से की [28]। उम्दत-उल-अख़बार, जिसे बरेली के छात्रों द्वारा संचालित किया जाता था, का प्रेस जब्त कर उसे बंद करा दिया गया [29]। लखनऊ से प्रकाशित तिलिस्म-ए-लखनऊ ने भी विद्रोही गतिविधियों का दस्तावेजीकरण किया [30]। वहीं सादिक-उल-अख़बार ने सम्राट की एकता संबंधी घोषणाओं को प्रकाशित कर विद्रोही विचारधारा के प्रसार में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई [31]।

प्रणालीगत सीमाएँ और संकर मीडिया पारिस्थितिकी

उपलब्ध ऐतिहासिक अनुमानों के अनुसार 1857 के समय उत्तर भारत में साक्षरता दर 10 प्रतिशत से भी कम थी, जिसमें क्षेत्रीय और सामाजिक विविधताएँ स्पष्ट रूप से मौजूद थीं [32]। भाषायी समाचार-पत्रों का प्रत्यक्ष पाठक-वर्ग सीमित थाअधिकांशतः कुछ सौ से लेकर कुछ हज़ार तक। फिर भी, उनका वास्तविक प्रभाव कहीं अधिक व्यापक था, क्योंकि उनका प्रसार केवल मुद्रित रूप तक सीमित नहीं था। सार्वजनिक वाचन, अफ़वाह-तंत्र और मौखिक संचार के अन्य माध्यमों के द्वारा ये समाचार व्यापक जनसमूह तक पहुँचते थे। इस प्रकार, मुद्रित शब्द एक व्यापक मौखिक संचार-व्यवस्था के भीतर उत्प्रेरक की भूमिका निभाता था। इस संदर्भ में क्रान्तिकारी प्रेस को एक संकर मीडिया पारिस्थितिकी के प्रतीकात्मक केन्द्र के रूप में समझा जा सकता है, जहाँ एक मुद्रित पाठ अनेक स्तरों पर मौखिक संप्रेषण की श्रृंखला को जन्म देता था। यही कारण था कि औपनिवेशिक शासन ने न केवल प्रेस पर, बल्कि मौखिक सूचना-वहनकर्ताओं पर भी नियंत्रण स्थापित करने का प्रयास किया। स्पष्ट

[17] प्रेस एक्ट XV, 13 जून 1857, NAI।
[18] पयाम-ए-आज़ादी, फरवरी 1857, ब्रिटिश लाइब्रेरी।
[19] पयाम-ए-आज़ादी, उद्धृत, वही।
[20] ब्रिटिश लाइब्रेरी, पयाम-ए-आज़ादी की प्रतियाँ।
[21] दिल्ली उर्दू अख़बार, 1837-1857, सप्रे संग्रहालय।
[22] वही।
[23] दिल्ली उर्दू अख़बार, मई 1857।
[24] अख़बार-उज़-ज़फ़र, 12 जुलाई 1857।
[25] वही, जून 1857।
[26] शेख सादी, गुलिस्ताँ, उद्धृत दिल्ली उर्दू अख़बार में।
[27] विलियम हडसन, 16 सितंबर 1857 की कार्रवाई रिपोर्ट, NAI।
[28] जाम-ए-जमशेद, जून-अगस्त 1857।
[29] उम्दत-उल-अख़बार, 1857, सप्रे संग्रहालय।
[30] तिलिस्म-ए-लखनऊ, 1857, सप्रे संग्रहालय।
[31] सादिक-उल-अख़बार, 1857, सप्रे संग्रहालय।
[32] जनगणना आकलन, 1857, NAI।

है कि औपनिवेशिक सत्ता भाषायी प्रेस को मात्र संचार माध्यम नहीं, बल्कि एक संभावित राजनीतिक खतरे के रूप में देखती थी।

(ख) सुधारवादी अंग्रेज़ी प्रेस

कलकत्ता से प्रकाशित द हिंदू पैट्रियट, जिसके संपादक हरिश्चंद्र मुखर्जी थे, ने विद्रोह की व्याख्या एक भिन्न दृष्टिकोण से की। इसने तर्क दिया कि विद्रोह के कारण "गहराई तक पैठे असंतोष" और "विदेशी शासन के अधीनता से उत्पन्न शिकायतों" में निहित थे। इस पत्र ने यह भी इंगित किया कि सिपाहियों के अत्याचारों को अत्यधिक बढ़ा-चढ़ाकर प्रस्तुत किया गया, जबकि ब्रिटिश प्रतिशोध की कठोरता को पर्याप्त रूप से नहीं दिखाया गया [33]। इससे पूर्व यह पत्र नील प्रणाली के विरुद्ध अभियान चला चुका था और भारतीय अधिकारों की वकालत करता रहा था, जिसके कारण यह संवैधानिक राष्ट्रवाद की एक प्रमुख आवाज के रूप में उभरा [34]। इस उदाहरण से यह स्पष्ट होता है कि औपनिवेशिक सार्वजनिक क्षेत्र के भीतर भी असहमति के स्वर मौजूद थे, किन्तु उनकी अभिव्यक्ति सीमित दायरे में ही संभव थी। क्रान्तिकारी प्रेस के विपरीत, द हिंदू पैट्रियट जैसे पत्र इसलिए जीवित रह सके क्योंकि वे औपनिवेशिक सत्ता की भाषा में लिखे जाते थे और प्रत्यक्ष सशस्त्र प्रतिरोध का समर्थन नहीं करते थे।

4. भारत में ब्रिटिश-संचालित समाचार-पत्र

भारत में संचालित ब्रिटिश समाचार-पत्रों ने 1857 के विद्रोह के संदर्भ में एक जटिल और बहुआयामी भूमिका निभाई। एक ओर वे औपनिवेशिक सत्ता के संचार माध्यम के रूप में कार्य कर रहे थे, वहीं दूसरी ओर उनकी रिपोर्टिंग में ऐसे तत्व भी सामने आए, जिन्होंने अनजाने में प्रशासनिक विफलताओं को उजागर किया। द बॉम्बे टाइम्स ने 12 जनवरी और 19 जनवरी 1857 के अपने अंकों में ही असंतोष के प्रारम्भिक संकेतों की ओर ध्यान आकर्षित कर दिया था [35]। विद्रोह के व्यापक रूप लेने से पूर्व इसने सेना की आंतरिक समस्याओं और विफलताओं का विश्लेषण भी प्रस्तुत किया [36]। यद्यपि इस पत्र ने कभी किसी व्यापक जन-उभार को स्वीकार नहीं किया, फिर भी इसने अनेक ऐसे संकेत दर्ज किए जो विद्रोह की पृष्ठभूमि को समझने में महत्त्वपूर्ण थेजैसे टेलीग्राफ लाइनों का काटा जाना, जेलों का तोड़ा जाना, तथाकथित "चपाती प्रकरण" (जिसमें उत्तर भारत के गाँवों में चपातियों का रहस्यमय प्रसार हुआ, जिसे अंग्रेजों ने संभावित चेतावनी संकेत के रूप में देखा), तथा सिपाहियों की रात्रिकालीन गुप्त बैठकों की सूचनाएँ [37]।

1 जनवरी 1857 को प्रारम्भ हुए द होमवर्ड मेल फ्रॉम इंडिया, चाइना, एंड द ईस्ट ने अपने 1857–58 के अंकों में इस पूरे घटनाक्रम को लगातार "भारतीय सेना का विद्रोह" कहकर संबोधित किया [38]। यह नामकरण स्वयं इस बात को दर्शाता है कि ब्रिटिश प्रेस किस प्रकार इस संघर्ष को सीमित अर्थों में परिभाषित करने का प्रयास कर रहा था। 13 जून 1857 को गैगिंग एक्ट लागू होने के बाद द फ्रेंड ऑफ इंडिया वह पहला समाचार-पत्र बना जिस पर इस कानून का प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा। इस पत्र ने 25 जून 1857 को "प्लासी की शताब्दी" शीर्षक से एक लेख प्रकाशित किया था, जिसे प्रशासन ने आपत्तिजनक माना [39]। यह घटना इस तथ्य को रेखांकित करती है कि औपनिवेशिक सत्ता अपने ही संचार माध्यमों पर भी नियंत्रण स्थापित करने के लिए तत्पर थी। अन्य एंग्लो-इंडियन समाचार-पत्रजैसे द कलकत्ता रिव्यू, बॉम्बे टेलीग्राफ एंड कूरियर तथा द इंडियन डेली न्यूज़ने भी अभिजात्य वर्ग के जनमत को आकार देने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। यद्यपि इनकी अधिकांश रिपोर्टिंग "सिपाही-विद्रोह" के आधिकारिक ढाँचे के भीतर ही सीमित रही, फिर भी इनके माध्यम से औपनिवेशिक शासन की अंतर्विरोधी स्थितियाँ उजागर होती रहीं [40]। इस प्रकार, ब्रिटिश-संचालित प्रेस ने दोहरी भूमिका निभाई। एक ओर वह साम्राज्यवादी दृष्टिकोण को प्रसारित करने का सशक्त उपकरण था, वहीं दूसरी ओर उसकी रिपोर्टिंग में निहित सूचनाएँ प्रशासनिक कमजोरियों को भी सामने लाती थीं। यद्यपि इन पत्रों ने कभी किसी व्यापक जन-उभार को स्वीकार नहीं किया, फिर भी उनकी रिपोर्टों ने कंपनी शासन की आलोचना के लिए पर्याप्त वैचारिक आधार उपलब्ध कराया।

5. विद्रोही नेतृत्व और औपनिवेशिक-विरोधी विचारधारा की अभिव्यक्ति

1857 के विद्रोह ने ऐसे नेतृत्व को सामने लाया, जो केवल सैन्य रणनीति तक सीमित नहीं था, बल्कि वह कथा-निर्माण और सामाजिक एकता की राजनीतिक आवश्यकता को भी भली-भाँति समझता था। विद्रोही नेताओं द्वारा जारी पत्रों और घोषणापत्रों से यह स्पष्ट होता है कि वे औपनिवेशिक सत्ता के विरुद्ध एक वैकल्पिक विमर्श खड़ा करने का सुविचारित प्रयास कर रहे थे।

बरेली में खान बहादुर खान

31 मई 1857 को बरेली पर अधिकार स्थापित करने के बाद खान बहादुर खान ने यह घोषणा की कि अंग्रेजों का शासन समाप्त हो चुका है और दिल्ली के बादशाह को भारत का वैध शासक माना जाना चाहिए [41]। यह उद्घोषणा केवल सत्ता-परिवर्तन का दावा नहीं थी, बल्कि औपनिवेशिक वैधता को सीधे चुनौती देने का प्रयास भी थी। ब्रिटिश प्रशासन ने इस चरण पर हिंदू-मुस्लिम विभाजन को उभारने की रणनीति अपनाई, किन्तु बरेली के संदर्भ में यह प्रयास सफल नहीं हो सका [42]। इससे स्पष्ट होता है कि विद्रोही नेतृत्व धार्मिक आधार पर विभाजन के बजाय एक व्यापक राजनीतिक एकता स्थापित करने का प्रयास कर रहा था।

खान बहादुर का घोषणापत्र (मार्च 1858)

मार्च 1858 में जारी खान बहादुर खान का घोषणापत्र धार्मिक एकता और सैन्य आवश्यकता के बीच स्पष्ट संबंध स्थापित करता है। इसमें कहा गया:

"आप सभी हिंदुओं को गंगा, तुलसी और शालिग्राम की शपथ दिलाई जाती है, और आप सभी मुसलमानों को अल्लाह और कुरान की... चूँकि अंग्रेज दोनों के समान शत्रु हैं... इसलिए सभी मुस्लिम सरदारों ने यह पवित्र संकल्प लिया है कि यदि हिंदू अंग्रेजों के विरुद्ध संघर्ष में अग्रसर होते हैं, तो मुसलमान गोहत्या पर प्रतिबंध लगाने के लिए प्रतिबद्ध होंगे [43]।"

यह घोषणापत्र इस बात का सशक्त उदाहरण है कि विद्रोही नेतृत्व धार्मिक प्रतीकों और आस्थाओं का उपयोग केवल भावनात्मक अपील के रूप में नहीं, बल्कि रणनीतिक एकजुटता के साधन के रूप में कर रहा था।

---

[33] द हिंदू पैट्रियट, 3 अक्टूबर 1857।

[34] वही, 1850-1857 के अंक।

[35] द बॉम्बे टाइम्स, 12 जनवरी 1857; 19 जनवरी 1857।

[36] वही, 18 मई 1857; 27 मई 1857।

[37] वही।

[38] द होमवर्ड मेल फ्रॉम इंडिया, चाइना, एंड द ईस्ट, 1 जनवरी 1857; 13 नवंबर 1858।

[39] द फ्रेंड ऑफ इंडिया, 28 मई 1857; 25 जून 1857।

[40] द कलकत्ता रिव्यू, 1857; बॉम्बे टेलीग्राफ एंड कूरियर, 1857; द इंडियन डेली न्यूज़, 1857।

[41] खान बहादुर खान, 31 मई 1857 की घोषणा, NAI।

[42] जे. एफ. डी. इंगलिस, Narratives of Occurrences at Bareilly (1858)।

[43] खान बहादुर खान का घोषणापत्र, मार्च 1858, NAI।

तात्या टोपे का पत्र (2 जनवरी 1858)

तात्या टोपे के पत्र में संप्रभुता की पुनर्स्थापना की स्पष्ट अवधारणा दिखाई देती है। वे लिखते हैं:

"मेरे स्वामी ने... हिंदू और मुस्लिम धर्मों की रक्षा के उद्देश्य से ईसाइयों के विरुद्ध संघर्ष का निश्चय किया है... उनका उद्देश्य अन्य शक्तिशाली राजाओं के क्षेत्रों पर अधिकार करना नहीं है... बल्कि उन्हें उनके अपने-अपने अधिकार क्षेत्र वापस दिलाना है [44]।"

यह दृष्टिकोण यह संकेत देता है कि विद्रोह का लक्ष्य केवल औपनिवेशिक सत्ता को हटाना नहीं था, बल्कि एक ऐसी राजनीतिक व्यवस्था की पुनर्स्थापना भी था जिसमें पारंपरिक संप्रभुताएँ पुनः स्थापित हों।

मौलवी अहमदुल्लाह शाह

वज़ीर ख़ान की 1859 की गवाही मौलवी अहमदुल्लाह शाह को एक ऐसे नेता के रूप में प्रस्तुत करती है, जिसने अंग्रेजों के विरुद्ध खुले रूप से धार्मिक संघर्ष का आह्वान किया और रिहाई के पश्चात् एक प्रभावशाली नेतृत्व के रूप में उभरे [45]। उनकी गतिविधियाँ यह दर्शाती हैं कि विद्रोह के दौरान धार्मिक भाषा और प्रतीकों का प्रयोग केवल वैचारिक नहीं, बल्कि संगठनात्मक और प्रेरक भूमिका भी निभा रहा था।

खंड का निष्कर्ष

इन सभी उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि विद्रोही नेतृत्व ने इस संघर्ष को केवल सैन्य टकराव के रूप में नहीं देखा। उनके लिए यह एक व्यापक विमर्शात्मक संघर्ष भी था, जिसमें संप्रभुता, वैधता और सामाजिक एकता के प्रश्न केंद्रीय थे। उनके घोषणापत्रों और पत्रों ने औपनिवेशिक शासन की वैधता को सीधे अस्वीकार करते हुए हिंदू-मुस्लिम एकता का आह्वान किया। इस प्रकार, विद्रोह केवल हथियारों से नहीं, बल्कि विचारों और कहानियों के स्तर पर भी लड़ा जा रहा था।

6. वैश्विक समाचार नेटवर्क: गति के रूप में सत्ता

पीटर पुटनिस ने उन संचार-नेटवर्कों की संरचना को स्पष्ट किया है, जिनके माध्यम से 1857 का विद्रोह एक क्षेत्रीय घटना से आगे बढ़कर वैश्विक परिघटना में परिवर्तित हुआ। 10 मई 1857 को मेरठ से आगरा भेजे गए दो टेलीग्रामों के माध्यम से इस घटना की पहली सूचना औपनिवेशिक प्रशासन तक पहुँची; यद्यपि इसके तुरंत बाद ही संचार-तार काट दिए गए [46]। द बॉम्बे टाइम्स को यह टेलीग्राम 11 मई को प्राप्त हुआ और उसने 12 मई को इसे प्रकाशित कर दिया। उसी दिन तैयार किया गया स्टीमर संस्करण, जिसमें मेरठ के टेलीग्राम को 'विशेषांक' के रूप में सम्मिलित किया गया था, 'नूबिया' नामक जहाज द्वारा रवाना किया गया और 28 मई को स्वेज पहुँचा। वहाँ से यह डाक अलेक्जेंड्रिया ले जाई गई, जहाँ से उसे 'जूरा' जहाज पर लादकर 30 मई को इंग्लैंड भेजा गया। यह सामग्री 6 जून को मार्सिले पहुँची, जहाँ से द टाइम्स के संवाददाता ने इसे टेलीग्राम के माध्यम से आगे प्रेषित किया। अंततः, 6 जून 1857 को द टाइम्स ने इस समाचार को प्रकाशित किया [47]। इसके पश्चात् रेवरेंड टी. सी. स्माइथ द्वारा वर्णित "भयानक नरसंहार" का विवरण 30 जून 1857 को द टाइम्स में प्रकाशित हुआ, जिसे बाद में न्यूयॉर्क डेली टाइम्स (8 जुलाई 1857), केप आर्गस (8 अगस्त 1857) और मेलबर्न आर्गस (7 सितंबर 1857) जैसे विभिन्न अंतरराष्ट्रीय समाचार-पत्रों में लगभग ज्यों का त्यों पुनर्मुद्रित किया गया [48]।

गति का सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्य

साम्राज्यवादी सत्ता केवल सूचना की विषय-वस्तु पर नियंत्रण तक सीमित नहीं थी; वह सूचना के प्रसार की गति और उसके अनुक्रम को भी नियंत्रित करती थी। कौन-सा समाचार सबसे पहले पहुँचेगा और किस रूप में पहुँचेगायह स्वयं इस बात को निर्धारित करता था कि उसे प्रारम्भिक वैधता प्राप्त होगी या नहीं। इस प्रकार, 'गति' केवल एक तकनीकी कारक नहीं थी, बल्कि कथा-निर्माण की प्रक्रिया में सक्रिय भूमिका निभाने वाला एक संरचनात्मक तत्व थी। टेलीग्राफ और भाप-पोत जैसे संचार माध्यमों ने उन सूचनाओं को प्राथमिकता दी, जो सबसे पहले और प्रायः सबसे अधिक सनसनीखेज रूप में प्रसारित हुईं। यही भौतिक संचार-अवसंरचना यह निर्धारित करती थी कि वैश्विक स्तर पर किन आवाज़ों को प्रमुखता मिलेगी और किन्हें हाशिए पर धकेल दिया जाएगा। इस प्रकार, सूचना का प्रवाह स्वयं सत्ता-संबंधों का अंग बन गया, जिसने न केवल घटनाओं के प्रसार को नियंत्रित किया, बल्कि उनकी व्याख्या और स्मृति-निर्माण को भी प्रभावित किया।

7. वैश्विक मीडिया कवरेज: दुनिया ने विद्रोह को कैसे देखा

क्षेत्र	प्रमुख आख्यान (Narrative Frame)	अंतर्निहित उद्देश्य (Strategic Intent)
ब्रिटेन	सिपाही-विद्रोह / "बर्बर बगावत"	साम्राज्यवादी प्रतिशोध को वैध ठहराना तथा औपनिवेशिक नियंत्रण को सुदृढ़ करना
फ्रांस	क्रांति / औपनिवेशिक-विरोधी उभार	ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध वैचारिक प्रतिस्पर्धा एवं प्रभाव-क्षेत्र का विस्तार
रूस	औपनिवेशिक-विरोधी संघर्ष / ऐतिहासिक अनिवार्यता	ब्रिटिश प्रभुत्व को चुनौती देने हेतु भू-राजनीतिक रणनीति को पुष्ट करना
संयुक्त राज्य अमेरिका	आर्थिक अस्थिरता का संकेत	कपास व्यापार, औद्योगिक हितों तथा दास-प्रथा संबंधी चिंताओं को रेखांकित करना
चीन	मौन सहानुभूति	ब्रिटेन को साझा शत्रु के रूप में देखते हुए अप्रत्यक्ष वैचारिक समर्थन

फ्रांस

फ्रांसीसी समाचार-पत्रोंजैसे एल'एस्टाफेट (15 अगस्त 1857) और जर्नल डे डेबैट्स (22 अगस्त 1857)ने भारत की घटनाओं को ब्रिटिश औपनिवेशिक नीति की विफलता के रूप में प्रस्तुत किया। इन पत्रों में यह आशंका व्यक्त की गई कि भारत का नुकसान ब्रिटेन के वाणिज्य के लिए गंभीर आघात सिद्ध होगा, और यह भी कहा गया कि अंग्रेजों ने भारतीयों के साथ क्रूरतापूर्ण व्यवहार किया है [49]। फ्रांसीसी प्रेस ने इस उभार को 'सिपाही-विद्रोह' के बजाय 'क्रांति' के रूप में व्याख्यायित किया। यह दृष्टिकोण स्पष्ट रूप से साम्राज्यवादी प्रतिस्पर्धा से प्रेरित थाब्रिटेन को कमजोर करने की

[44] तात्या टोपे, 2 जनवरी 1858 का पत्र, NAI।

[45] वज़ीर खान, 1859 की गवाही, NAI।

[46] पीटर पुटनिस, "The Indian Mutiny of 1857 as a Global Media Event," Media History 14, no. 3 (2008): 281-302।

[47] द टाइम्स, 6 जून 1857।

[48] न्यूयॉर्क डेली टाइम्स, 8 जुलाई 1857; केप आर्गस, 8 अगस्त 1857; मेलबर्न आर्गस, 7 सितंबर 1857।

[49] एल'एस्टाफेट, 15 अगस्त 1857; जर्नल डे डेबैट्स, 22 अगस्त 1857।

इच्छा ने इस विद्रोह को वैधता प्रदान करने की प्रवृत्ति को जन्म दिया। परिणामस्वरूप, फ्रांसीसी कवरेज ने इस घटना को औपनिवेशिक आलोचना के एक प्रभावी माध्यम में परिवर्तित कर दिया।

जर्मनी: जर्मन प्रेस की प्रतिक्रिया अपेक्षाकृत अधिक संशयपूर्ण थी। वोल्क्स-ज़ितुंग (बर्लिन, 10 सितंबर 1857) ने यह मत व्यक्त किया कि भारत अभी उस स्तर की सामाजिक-सांस्कृतिक प्रगति तक नहीं पहुँचा है, जहाँ किसी क्रांति को वैध ठहराया जा सके [50]। वहीं क्रेयूज़-ज़ितुंग (25 सितंबर 1857) में थियोडोर फॉन्टेन ने इस विद्रोह में रूसी भूमिका की संभावनाओं को खारिज किया [51]। एडगर बाउर ने इस घटना की तुलना आयरलैंड, इटली और हंगरी के समकालीन आंदोलनों से की [52]। इन प्रतिक्रियाओं से स्पष्ट होता है कि यूरोपीय विश्लेषण प्रायः 'सभ्यता' के नस्लीकृत पदानुक्रमों के ढाँचे में बँधा हुआ था। जर्मन परिप्रेक्ष्य में यह विद्रोह इस प्रश्न की कसौटी बन गया कि क्या गैर-यूरोपीय समाजों को 'क्रांतिकारी' होने का वैध अधिकार प्राप्त है।

रूस: रूसी बौद्धिक जगत में इस विद्रोह को लेकर द्वैध दृष्टिकोण दिखाई देता है। एन. ए. डोब्रोल्युबोव ने इसे "ऐतिहासिक रूप से आवश्यक" घटना माना [53]। रुस्कीय वेस्टनिक (अक्टूबर 1857) ने इसे 'बर्बरता बनाम सभ्यता' के रूप में प्रस्तुत करते हुए ब्रिटिश विजय की संभावना व्यक्त की। इसके विपरीत, लंदन से प्रकाशित प्रवासी पत्रिका कोलोकोल (1 नवंबर 1857) ने औपनिवेशिक-विरोधी आंदोलनों के प्रति सहानुभूति दिखाई [54]। यह विरोधाभास रूसी नीति-निर्माण के भीतर मौजूद उस अंतर्द्वंद्व को दर्शाता है, जिसमें एक ओर औपनिवेशिक शक्तियों के विरुद्ध समर्थन था, तो दूसरी ओर व्यावहारिक भू-राजनीतिक हित भी सक्रिय थे।

संयुक्त राज्य अमेरिका: अमेरिकी प्रेस ने 1857 की घटनाओं को मुख्यतः आर्थिक दृष्टि से देखा। द वाशिंगटन यूनियन (11 जुलाई 1857) ने कपास और चीनी की आपूर्ति में कमी को लेकर चिंता व्यक्त की [55]। अमेरिकी परिप्रेक्ष्य में यह विद्रोह केवल एक दूरस्थ राजनीतिक घटना नहीं था, बल्कि घरेलू आर्थिक और सामाजिक तनावोंविशेषतः कपास व्यापार और दास-प्रथा से जुड़े प्रश्नोंके संदर्भ में समझा गया। इस प्रकार, अमेरिकी कवरेज ने इस घटना को अपने आंतरिक गुटीय संघर्षों के परिप्रेक्ष्य में पुनर्परिभाषित किया।

चीन

1857 के विद्रोह का एक अप्रत्यक्ष प्रभाव चीन पर भी पड़ा। इसने ब्रिटेन को द्वितीय अफीम युद्ध से अपने सैनिकों को वापस बुलाने के लिए बाध्य किया, जिससे चीन को सामरिक लाभ मिला। हालाँकि, चीन के संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि वहाँ इस सहानुभूति को व्यापक रूप से व्यक्त करने के लिए प्रभावी मीडिया अवसंरचना का अभाव था। भाषायी समाचार-पत्रों की सीमित उपस्थिति के कारण इस समर्थन का सार्वजनिक प्रसार नहीं हो सका [56]। यह उदाहरण इस बात को रेखांकित करता है कि केवल भू-राजनीतिक सामंजस्य पर्याप्त नहीं होता; उसके प्रभावी संप्रेषण के लिए सुदृढ़ मीडिया संरचना भी आवश्यक होती है।

मार्क्स और एंगेल्स: वैश्विक अर्थ की पुनर्व्याख्या

कार्ल मार्क्स ने न्यूयॉर्क डेली ट्रिब्यून (31 जुलाई 1857) में इस विद्रोह को 'सिपाही-विद्रोह' की संकीर्ण परिभाषा से बाहर निकालते हुए एक व्यापक राष्ट्रीय विद्रोह के रूप में व्याख्यायित किया। उनके अनुसार, जो सतह पर एक सैन्य अशांति प्रतीत होती है, वह वास्तव में गहरे राजनीतिक असंतोष का परिणाम थी। मार्क्स ने यह भी तर्क दिया कि सिपाहियों द्वारा की गई हिंसा, औपनिवेशिक शासन की संरचनात्मक हिंसा का ही सघन रूप थी। फ्रेडरिक एंगेल्स ने भी इसी प्रकार ब्रिटिश प्रतिशोध की आलोचना की और लखनऊ की घटनाओं को अनुशासनहीनता और क्रूरता का उदाहरण बताया। फिर भी, यह महत्वपूर्ण है कि इस वैकल्पिक व्याख्या का प्रभाव सीमित रहा। न्यूयॉर्क डेली ट्रिब्यून का पाठक-वर्ग द टाइम्स की तुलना में बहुत छोटा था, जिसके कारण मार्क्स और एंगेल्स का विश्लेषण व्यापक जनमत को प्रभावित करने में सक्षम नहीं हो सका। यह स्थिति एक महत्वपूर्ण तथ्य को रेखांकित करती हैकथा का प्रभुत्व केवल उसकी वैचारिक शक्ति पर निर्भर नहीं करता, बल्कि उसके प्रसार और संप्रेषण की संरचनाओं पर भी निर्भर करता है, जो उस समय ब्रिटिश स्रोतों के पक्ष में थीं।

संश्लेषणात्मक निष्कर्ष

विभिन्न क्षेत्रों में 1857 के विद्रोह की व्याख्या उसके वास्तविक स्वरूप को समझने की अपेक्षा, उसे अपने-अपने राजनीतिक संदर्भों के अनुरूप ढालने के रूप में अधिक सामने आती है। प्रत्येक देश की प्रेस ने इस घटना को अपनी आंतरिक और बाहरी चिंताओं के अनुरूप पुनर्संरचित किया। इस प्रकार, 1857 कोई एकसमान वैश्विक कथा नहीं थी, बल्कि यह विभिन्न भू-राजनीतिक हितों और असमान मीडिया अवसंरचनाओं के बीच निर्मित एक बहुस्तरीय और विवादित कथा-क्षेत्र था।

8. ब्रिटिश उपनिवेशों से प्रतिक्रियाएँ

1857–58 के विद्रोह की गूँज केवल भारत तक सीमित नहीं रही, बल्कि उसने ब्रिटिश साम्राज्य के विभिन्न उपनिवेशों में भी राजनीतिक, वैचारिक और प्रेस-स्तरीय हलचल उत्पन्न कर दी। इस घटना को लेकर उपनिवेशों की प्रतिक्रियाएँ एकसमान नहीं थीं; इनमें समर्थन, संदेह, भय और साम्राज्यवादी निष्ठासभी प्रकार की प्रवृत्तियाँ एक साथ देखी जा सकती हैं।

आयरलैंड में राष्ट्रवादी दृष्टिकोण से प्रकाशित समाचार पत्र नेशन ने भारत में ब्रिटिश शासन को सीधे तौर पर औपनिवेशिक दमन की व्यापक संरचना के हिस्से के रूप में देखा। इस पत्र ने "अंग्रेजी कुशासन" की आलोचना करते हुए भारत की स्थिति को आयरलैंड में ब्रिटिश शासन के अनुभव से जोड़कर प्रस्तुत किया। इसके विपरीत, संघवादी दृष्टिकोण रखने वाले बेलफास्ट न्यूज़-लेटर (8 सितंबर 1857) ने विद्रोह के समर्थकों और सहानुभूति रखने वाले लेखकों की तीखी आलोचना की। उसने ऐसे पत्रकारों की भाषा को अत्यधिक आक्रामक रूप में प्रस्तुत करते हुए उन्हें "पतित देवदूतों के समान एक पैशाचिक आनंद के साथ" उत्सव मनाने वाला बताया [57]।

कनाडा में प्रेस का रुख अपेक्षाकृत संशयात्मक और ब्रिटिश प्रशासन के प्रति झुकाव रखने वाला दिखाई देता है। द टोरंटो वीकली मैसेज (15 जनवरी 1858) ने विद्रोह से संबंधित अत्याचारों और हिंसा की रिपोर्टों को संदेह की दृष्टि से देखते हुए यह संकेत दिया कि ऐसी अनेक सूचनाएँ संभवतः ब्रिटिश अधिकारियों द्वारा निर्मित या अतिरंजित कहानियाँ हो सकती हैं [58]।

ऑस्ट्रेलिया में स्थिति कुछ भिन्न थी। द मेलबर्न आर्गस (7 जुलाई

[50] वोल्क्स-ज़ितुंग, 10 सितंबर 1857।
[51] क्रेयूज़-ज़ितुंग, 25 सितंबर 1857।
[52] एडगर बाउर, उद्धृत इबिड।
[53] एन. ए. डोब्रोल्युबोव, उद्धृत रुस्कीय वेस्टनिक, अक्टूबर 1857।
[54] कोलोकोल, 1 नवंबर 1857।
[55] द वाशिंगटन यूनियन, 11 जुलाई 1857।
[56] चीनी मीडिया पर चर्चा, इबिड।
[57] द नेशन, 12 सितंबर 1857; बेलफास्ट न्यूज़-लेटर, 8 सितंबर 1857।
[58] द टोरंटो वीकली मैसेज, 15 जनवरी 1858।

1857) ने विद्रोह की प्रारंभिक खबरों को प्रकाशित करते हुए उपनिवेशों में व्यापक जागरूकता उत्पन्न की। इसके साथ ही विभिन्न ऑस्ट्रेलियाई उपनिवेशों में ब्रिटिश साम्राज्य के समर्थन में धन-संग्रह अभियानों का आयोजन भी किया गया, जो साम्राज्यवादी एकजुटता के सार्वजनिक प्रदर्शन के रूप में देखा जा सकता है [59]।

दक्षिण अफ्रीका में द केप आर्गस (8 अगस्त 1857) ने ब्रिटिश साम्राज्य के पक्ष में रुख अपनाते हुए विद्रोह की आलोचना की, किंतु साथ ही स्थानीय सैन्य संसाधनों के उपयोग और विशेषकर कोसा सीमाओं से सैनिकों की तैनाती हटाए जाने के प्रश्न पर तीव्र सार्वजनिक बहसें भी सामने आईं [60]। यह स्थिति दर्शाती है कि साम्राज्य के भीतर सुरक्षा-नीति संबंधी प्राथमिकताएँ स्वयं उपनिवेशों के लिए भी विवाद का विषय थीं।

समग्र रूप से देखा जाए तो ब्रिटिश उपनिवेशों की प्रतिक्रियाएँ केवल एकरेखीय साम्राज्यवादी समर्थन तक सीमित नहीं थीं। इनमें जहाँ एक ओर औपचारिक निष्ठा और साम्राज्य के प्रति सार्वजनिक समर्थन का प्रदर्शन दिखाई देता है, वहीं दूसरी ओर गहरे स्तर पर यह आशंका भी सक्रिय थी कि भारत का यह विद्रोह कहीं अन्य उपनिवेशों की स्थानीय और मूलनिवासी आबादियों को भी प्रभावित न कर दे। इस प्रकार, यह प्रतिक्रियाएँ साम्राज्य के भीतर व्याप्त असुरक्षा, वैचारिक द्वंद्व और राजनीतिक चिंता का भी स्पष्ट संकेत प्रस्तुत करती हैं।

9. दृश्य माध्यम: प्रारंभिक दृश्य प्रचार

1857–58 के विद्रोह के संदर्भ में ब्रिटिश दृश्य-संस्कृति ने केवल घटनाओं का चित्रण भर नहीं किया, बल्कि उन्हें एक विशिष्ट वैचारिक ढाँचे में ढालने का कार्य भी किया। विशेष रूप से लंदन स्थित चित्रित प्रेस ने ऐसे दृश्य-प्रतिनिधित्व विकसित किए जिनका उद्देश्य सूचनात्मकता से अधिक भावनात्मक और राजनीतिक प्रभाव उत्पन्न करना था। इस प्रक्रिया को प्रारंभिक दृश्य प्रचार के रूप में समझना अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है, क्योंकि इसमें चित्र केवल घटनाओं के पुनरुत्पादन नहीं थे, बल्कि साम्राज्यवादी दृष्टिकोण के सक्रिय निर्माण के उपकरण बन गए थे।

द इलस्ट्रेटेड लंदन न्यूज़ (22 अगस्त 1857) में प्रकाशित चित्रों में ब्रिटिश सैनिकों और अधिकारियों को "नायकों" के रूप में प्रस्तुत किया गया, जो कथित रूप से "बर्बर" भारतीयों से यूरोपीय महिलाओं की रक्षा कर रहे थे। यह दृश्य संरचना अपने आप में एक स्पष्ट नैतिक विभाजन स्थापित करती है, जहाँ एक ओर संरक्षक सभ्यता है और दूसरी ओर आक्रामक असभ्यता। इसी प्रकार पंच पत्रिका में जॉन टेनिअल द्वारा निर्मित प्रसिद्ध कार्टून "The British Lion's Vengeance on the Bengal Tiger" (22 अगस्त 1857) में ब्रिटिश शेर को एक शक्तिशाली प्रतिशोधी रूप में और बंगाल टाइगर को पराजित, आक्रामक बाघ के रूप में प्रस्तुत किया गया [61]।

टेनिअल के ही एक अन्य चित्र "Justice" (सितंबर 1857) में 'लेडी जस्टिस' को आंखों पर पट्टी के बावजूद तलवार उठाए हुए भयभीत भारतीय आकृतियों के ऊपर खड़ा दिखाया गया [62]। यह दृश्य प्रतीकात्मकता इस विचार को पुष्ट करती है कि न्याय का सार्वभौमिक सिद्धांत भी साम्राज्यवादी दंडात्मकता के साथ गहराई से जुड़ा हुआ था। यहाँ न्याय का आदर्श निष्पक्षता से अधिक प्रतिशोधात्मक शक्ति के रूप में रूपांतरित हो जाता है।

इन उत्कीर्णनों का ऐतिहासिक महत्व केवल उनके कलात्मक मूल्य में नहीं, बल्कि उनके संचार-प्रभाव में निहित है। पाठ-आधारित समाचारों की तुलना में दृश्य माध्यम अधिक त्वरित, सार्वभौमिक और भावनात्मक प्रभाव उत्पन्न करने में सक्षम थे। उन्होंने साक्षरता की सीमाओं को पार करते हुए एक ऐसे व्यापक दर्शक-वर्ग तक पहुँच बनाई, जो लिखित अंग्रेजी समाचारों तक सीमित रूप से पहुँच रखता था। परिणामस्वरूप, विद्रोह की व्याख्या एक जटिल राजनीतिक-सामाजिक घटना के रूप में न होकर एक सरल नैतिक द्वंद्व के रूप में स्थापित होने लगी।

इन दृश्य प्रतिनिधित्वों में प्रयुक्त सांकेतिक भाषाविशेषकर शेर और बाघ का द्वैतएक गहरी नस्लीकरण की प्रक्रिया को प्रकट करती है। ब्रिटिश शेर को क्रमशः सभ्यता, अनुशासन और पुरुषत्व के प्रतीक के रूप में निर्मित किया गया, जबकि बंगाल टाइगर को असंयमित हिंसा, असभ्यता और खतरे के प्रतीक के रूप में स्थापित किया गया। यह पशु-रूपक केवल सौंदर्यात्मक उपकरण नहीं था, बल्कि एक वैचारिक संरचना थी, जिसने उपनिवेशी सत्ता संबंधों को प्राकृतिक और स्वाभाविक प्रतीत कराने का प्रयास किया। इसी प्रकार, श्वेत महिलाओं को असहाय पीड़ितों के रूप में और भारतीय पुरुषों को आक्रामक शिकारियों के रूप में चित्रित करने की प्रवृत्ति ने विद्रोह को एक लिंगीकृत और नस्लीकृत कथा में रूपांतरित कर दिया। इस प्रस्तुति ने "घरेलू पवित्रता" की रक्षा को साम्राज्यवादी हिंसा के औचित्य के रूप में पुनर्स्थापित किया। परिणामतः एक राजनीतिक विद्रोह का रूपांतरण एक नैतिक तमाशे में हो गया, जिसमें प्रतिशोध और दंड को न्यायोचित और आवश्यक कार्यवाही के रूप में प्रस्तुत किया गया।

इस प्रकार, दृश्य माध्यमों ने न केवल सूचना का प्रसार किया, बल्कि साम्राज्यवादी चेतना के निर्माण में सक्रिय भूमिका निभाई। उन्होंने 1857 के विद्रोह की ऐतिहासिक स्मृति को ऐसी दृश्य-भाषा प्रदान की, जिसने लंबे समय तक ब्रिटिश जनमानस में भारत और उपनिवेशी "अन्य" की समझ को प्रभावित किया।

10. विद्रोह का दमन: ब्रिटिश अत्याचार और दिल्ली का विनाश

1857 के विद्रोह के दमन के पश्चात उत्तर भारत में जिस प्रकार की हिंसा और प्रतिशोधात्मक कार्रवाइयाँ सामने आईं, वे किसी एकल घटना या सीमित सैन्य प्रतिक्रिया तक सीमित नहीं थीं। 20 सितंबर 1857 को दिल्ली पर अंग्रेजों के पुनः अधिकार के बाद जो परिदृश्य निर्मित हुआ, वह क्रमशः दंडात्मक अभियान, सामूहिक दमन और नागरिक जीवन के विघटन की एक व्यापक प्रक्रिया में परिवर्तित हो गया। यह हिंसा भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में अलग-अलग तीव्रता के साथ प्रकट हुई, किंतु इसकी संरचनात्मक प्रवृत्ति अपेक्षाकृत एकरूप थी।

शहरी हिंसा: दिल्ली दिल्ली पर पुनः नियंत्रण स्थापित होने के पश्चात शहर में जो स्थिति उत्पन्न हुई, उसका वर्णन समकालीन स्रोतों में अत्यंत भयावह रूप में मिलता है। मुग़ल कवि मिर्ज़ा ग़ालिब ने अपनी रचना 'दस्तंबू' में इस समय की परिस्थितियों को अत्यंत तीव्र संवेदनशीलता के साथ दर्ज किया है। वे लिखते हैं: "केवल खुदा ही जानता है कि कितने लोगों को फाँसी दी गई... विजयी सेना ने शहर में प्रवेश किया... रास्ते में जो कोई मिला, उसे मार डाला गया... गोरे लोगों ने असहाय और निर्दोष लोगों को मारना शुरू कर दिया... [63] ग़ालिब का यह विवरण इस तथ्य की ओर संकेत करता है कि दमन की प्रकृति केवल सैन्य नहीं थी, बल्कि वह नागरिक जीवन के भीतर तक व्याप्त हो चुकी थी। उल्लेखनीय है कि इस प्रकार के अनुभवजन्य वृत्तांत समकालीन ब्रिटिश प्रेस में लगभग अनुपस्थित रहे।

इसी प्रकार ज़हीर देहलवी के विवरण में सामूहिक दमन का एक

[59] द मेलबर्न आर्गस, 7 जुलाई 1857।

[60] द केप आर्गस, 8 अगस्त 1857।

[61] पंच, 22 अगस्त 1857।

[62] पंच, सितंबर 1857।

[63] मिर्ज़ा ग़ालिब, दस्तंबू (ऑक्सफोर्ड, 2003), पृ. 45-46।

और आयाम सामने आता है। वे कूचा चेलान में बड़े पैमाने पर गिरफ्तारियों और तत्पश्चात फाँसी की घटनाओं का उल्लेख करते हुए लिखते हैं कि सैकड़ों लोगों को एक साथ गोली मारकर यमुना में प्रवाहित कर दिया गया, तथा महिलाओं और बच्चों की स्थिति ऐसी भयावह हो गई कि अनेक ने कुओं में कूदकर आत्महत्या कर ली [64]। यह विवरण केवल हिंसा की मात्रा नहीं, बल्कि सामाजिक विघटन की गहराई को भी रेखांकित करता है।

ब्रिटिश पक्ष से प्राप्त कुछ विवरण इस परिदृश्य को अपेक्षाकृत भिन्न भाषा में प्रस्तुत करते हैं। सी. जे. ग्रिफिथ्स शहर को "वीरान और खामोश" बताते हुए उसे "मृतकों का नगर" कहते हैं, जहाँ शवों के कारण वातावरण दूषित प्रतीत होता है [65]। वहीं सर विलियम मुइर की खुफिया रिपोर्ट (31 अक्टूबर 1857) में यह स्वीकार किया गया है कि शहर लूटा जा चुका है और निवासियों को भूख एवं निर्वासन की स्थिति में धकेल दिया गया है, साथ ही उनके साथ "क्रूरतापूर्ण व्यवहार" की संभावना से भी इनकार नहीं किया गया है [66]।

पंजाब में दमनात्मक कार्रवाइयाँ

पंजाब क्षेत्र में विद्रोह के पश्चात की गई कार्रवाइयाँ अपेक्षाकृत संगठित दंडात्मक नीति का रूप ग्रहण करती हैं। हिंदुस्तानी सिपाहियों को निहत्था करने के बाद व्यापक स्तर पर दमनात्मक हिंसा की घटनाएँ दर्ज होती हैं। फ्रेडरिक कूपर द्वारा वर्णित अजनाला की घटना में बड़ी संख्या में सिपाहियों को बंदी बनाकर सामूहिक रूप से फाँसी दिए जाने का उल्लेख मिलता है, जहाँ मृतकों की संख्या लगभग दो सौ से अधिक बताई जाती है [67]। इस घटना की तुलना हॉलवेल के 'ब्लैक होल' से करते हुए समकालीन लेखक स्वयं इसकी भयावहता को ऐतिहासिक स्मृति के भीतर स्थापित करने का प्रयास करता है, यद्यपि संदर्भ और नैतिक व्याख्या भिन्न है।

लखनऊ का आर्थिक और भौतिक विघटन

लखनऊ के संदर्भ में डब्ल्यू. एच. रसेल के विवरण विशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं, जो द टाइम्स के संवाददाता के रूप में घटनास्थल पर उपस्थित थे। उनके अनुसार शहर में प्रवेश करने के पश्चात सैनिकों द्वारा व्यापक स्तर पर लूटपाट की गई, जिसमें कीमती वस्तुएँ, रत्न, वस्त्र और शाही संपत्ति शामिल थीं [68]। रसेल का वर्णन इस तथ्य को स्पष्ट करता है कि सैन्य विजय के साथ-साथ आर्थिक दोहन और सांस्कृतिक संपदा का विघटन भी समानांतर रूप से घटित हुआ।

विश्लेषणात्मक निष्कर्ष

उपरोक्त विवरणों के समग्र अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि दिल्ली, लखनऊ और पंजाब जैसे प्रमुख केंद्रों में ब्रिटिश दमन की प्रकृति केवल प्रतिशोधात्मक सैन्य कार्रवाई तक सीमित नहीं थी, बल्कि यह एक संरचनात्मक हिंसात्मक व्यवस्था का रूप ले चुकी थी, जिसमें दंड, लूट और नागरिक विघटन परस्पर जुड़ जाते हैं। तथापि, इन घटनाओं का प्रतिनिधित्व महानगरीय प्रेस और आधिकारिक कहानियों में अत्यंत असमान रूप से हुआ। जहाँ विद्रोही हिंसा को व्यापक नैतिक आक्रोश के रूप में प्रस्तुत किया गया, वहीं ब्रिटिश दमन को या तो रणनीतिक आवश्यकता के रूप में वैधता प्रदान की गई या उसे न्यूनतम दृश्यता दी गई। यह असंतुलन इस तथ्य की ओर संकेत करता है कि औपनिवेशिक सत्ता केवल सैन्य प्रभुत्व के माध्यम से ही नहीं, बल्कि ज्ञान और प्रतिनिधित्व के नियंत्रण के माध्यम से भी कार्य करती थी। परिणामतः हिंसा की दृश्यता चयनात्मक रूप से निर्मित की गईकुछ घटनाएँ वैश्विक स्मृति में गहराई से अंकित हुईं, जबकि अन्य को या तो सामान्यीकृत कर दिया गया या ऐतिहासिक विमर्श की परिधि से बाहर कर दिया गया।

11. सेंसरशिप और उसके परिणाम: गैगिंग एक्ट से वर्नाक्युलर प्रेस एक्ट तक

1857 के पश्चात औपनिवेशिक राज्य ने जिस प्रशासनिक-सुरक्षा संरचना को विकसित किया, उसका एक केंद्रीय स्तंभ सूचना-नियंत्रण बन गया। इसी क्रम में 1857 के दौरान लागू किए गए 'गैगिंग एक्ट' को एक प्रारंभिक आपातकालीन प्रतिक्रिया के रूप में देखा जा सकता है, जिसने प्रेस पर नियंत्रण स्थापित करने की दिशा में औपनिवेशिक नीति की रूपरेखा तैयार की। इस अधिनियम के माध्यम से प्रकाशन गतिविधियों पर लाइसेंस व्यवस्था, निगरानी तंत्र और दंडात्मक प्रावधानों को संस्थागत रूप प्रदान किया गया।

इसी नीति-परंपरा का विकसित और अधिक व्यवस्थित रूप 1878 के 'वर्नाक्युलर प्रेस एक्ट' में दिखाई देता है, जो लॉर्ड लिटन के शासनकाल में पारित हुआ। इस अधिनियम ने भाषाई प्रेस को विशेष रूप से लक्षित करते हुए उसे अंग्रेजी प्रेस से अलग श्रेणी में रख दिया। इसमें संपत्ति जब्ती, प्रकाशन प्रतिबंध तथा पूर्व-नियंत्रण जैसे प्रावधान शामिल थे, जिनका उद्देश्य स्थानीय भाषाओं में उभरती राजनीतिक अभिव्यक्ति को सीमित करना था। आगे चलकर 1882 में लॉर्ड रिपन द्वारा इसका निरसन किया जाना इस बात का संकेत है कि औपनिवेशिक शासन के भीतर भी प्रेस-नीति को लेकर निरंतर पुनर्समीक्षा और दबाव मौजूद था [69]।

इस संपूर्ण विकासक्रम से यह स्पष्ट होता है कि 1857 के बाद जो तात्कालिक सुरक्षा-उपाय आरंभ हुए, वे धीरे-धीरे औपनिवेशिक राज्य की स्थायी प्रशासनिक प्रवृत्ति में रूपांतरित हो गए। सूचना पर नियंत्रण को केवल आपातकालीन आवश्यकता नहीं, बल्कि शासन की संरचनात्मक शर्त के रूप में विकसित किया गया। इस प्रकार, औपनिवेशिक सत्ता ने यह समझ लिया कि राजनीतिक स्थिरता केवल सैन्य प्रभुत्व से नहीं, बल्कि सार्वजनिक विमर्श के नियंत्रण से भी सुनिश्चित होती है।

12. इतिहासलेखन संबंधी हस्तक्षेप

1857 के विद्रोह का इतिहासलेखन लंबे समय से विभिन्न वैचारिक और पद्धतिगत धाराओं के बीच विवाद का क्षेत्र रहा है। इस अध्ययन का उद्देश्य इन परंपराओं से संवाद स्थापित करते हुए एक वैकल्पिक व्याख्यात्मक ढांचा प्रस्तुत करना है, जिसमें संचार-तंत्र और मीडिया संरचनाएँ केंद्रीय विश्लेषणात्मक श्रेणी के रूप में उभरती हैं।

राष्ट्रवादी इतिहासलेखन, विशेषतः वी. डी. सावरकर की परंपरा, 1857 को एक संगठित स्वतंत्रता-संग्राम के रूप में प्रस्तुत करती है, जिसमें विद्रोह की एकता और समन्वय को अत्यधिक बल दिया गया। इसके विपरीत, कैम्ब्रिज स्कूल (जैसे एरिक स्टोक्स एवं अन्य) ने इसे क्षेत्रीय और स्थानीय असंतोषों का समुच्चय माना, जिससे एकीकृत राष्ट्रीय चेतना की अवधारणा को समस्या-ग्रस्त किया गया। इस दृष्टिकोण ने राजनीतिक विविधता को रेखांकित किया, किंतु इसके साथ ही संचार-नेटवर्कों और सूचनात्मक प्रवाह की भूमिका अपेक्षाकृत गौण रह गई।

दूसरी ओर, उपाश्रित अध्ययन परंपरा, विशेषतः रणजीत गुहा के कार्यों में, किसान चेतना और स्वायत्त एजेंसी पर बल देती है। 'एलिमेंट्री आस्पेक्ट्स ऑफ पीजेंट इंसर्जेंसी' में गुहा यह तर्क प्रस्तुत करते हैं कि किसान विद्रोह की चेतना अभिजात राष्ट्रवाद से स्वतंत्र रूप से विकसित होती है और औपनिवेशिक मुद्रण-व्यवस्था मूलतः

[64] ज़हीर देहलवी, दास्तान-ए-ग़दर (पेंग्विन, 2017), पृ. 112-115।

[65] सी. जे. ग्रिफिथ्स, A Narrative of the Siege of Delhi (लंदन, 1912), पृ. 210।

[66] सर विलियम मुइर, खुफिया रिपोर्ट, 31 अक्टूबर 1857, NAI।

[67] फ्रेडरिक कूपर, अजनाला घटनाओं पर विवरण, 1857।

[68] डब्ल्यू. एच. रसेल, My Diary in India (लंदन, 1860), पृ. 330-332।

[69] वर्नाक्युलर प्रेस एक्ट, 1878; लॉर्ड रिपन द्वारा निरसन, 1882, NAI।

एक आरोपित संरचना थी, जिसने मौखिक संस्कृतियों को विस्थापित किया [70]।

यह शोध-पत्र इस व्याख्या से आंशिक सहमति रखते हुए भी एक महत्वपूर्ण संशोधन प्रस्तुत करता है। गुहा द्वारा प्रस्तुत मौखिक बनाम मुद्रित द्वैत संरचना 1857 की वास्तविक संचार-गतिशीलता को पूर्णतः नहीं पकड़ पाती।

उपलब्ध साक्ष्यों से यह स्पष्ट होता है कि उर्दू और अन्य भाषाई प्रेसजैसे दिल्ली उर्दू अख़बार और पयाम-ए-आज़ादीकेवल अभिजात वर्ग तक सीमित माध्यम नहीं थे, बल्कि वे सार्वजनिक वाचन, अफवाह-तंत्र और मौखिक प्रसार के माध्यम से व्यापक सामाजिक परतों में संचरित होते थे।

इस संदर्भ में मुद्रण और मौखिकता एक-दूसरे के विरोधी नहीं, बल्कि परस्पर रूप से निर्मित संरचनाएँ प्रतीत होती हैं। इसी प्रकार, कैम्ब्रिज स्कूल द्वारा प्रस्तावित यह धारणा कि 1857 एक असंबद्ध स्थानीय घटनाओं का समूह था, उन पार-क्षेत्रीय संचार-लिंकों की उपेक्षा करती है जो समाचार-पत्रों, अफवाहों और प्रशासनिक रिपोर्टों के माध्यम से निर्मित हुए। वास्तव में, विद्रोह की घटनाएँ एक साझा व्याख्यात्मक क्षेत्र में परस्पर जुड़ती हुई प्रतीत होती हैं, जहाँ दूरी के बावजूद सूचनात्मक समकालिकता सक्रिय थी।

इस प्रकार, मौजूदा इतिहासलेखन की एक प्रमुख सीमा यह रही है कि उसने मीडिया और सूचना को केवल घटनाओं के प्रतिबिंब के रूप में देखा, न कि उन संरचनात्मक कारकों के रूप में जिन्होंने घटनाओं के अर्थ, वैधता और राजनीतिक प्रभाव को निर्मित किया। 1857 के अध्ययन को यदि केवल राजनीतिक या सामाजिक आंदोलन के रूप में देखा जाए, तो उसके संचारात्मक आयाम का गंभीर ह्रास होता है। यह शोध-पत्र अंततः 1857 को एक वैश्विक मीडिया घटना के रूप में पुनर्परिभाषित करता है, जिसमें संघर्ष केवल मैदानों में नहीं, बल्कि कहानियों, समाचारों और दृश्य-प्रतिनिधित्वों के स्तर पर भी निर्मित और विवादित हुआ। इस दृष्टि से, विद्रोह का वास्तविक संघर्ष केवल सत्ता के लिए नहीं, बल्कि अर्थ के नियंत्रण के लिए भी था।

13. निष्कर्ष: साम्राज्य का सूचनात्मक मूल तत्व

1857 का विद्रोह, अपने ऐतिहासिक विस्तार में, केवल सैन्य टकराव की घटना नहीं था। यह मूलतः एक बहु-स्तरीय संघर्ष था जिसमें सत्ता का संचालन जितना बंदूकों, तोपों और सैन्य रणनीति के माध्यम से हुआ, उतना ही संपादकीय निर्माण, दृश्य प्रतिनिधित्व, टेलीग्राफिक संचार, औपनिवेशिक घोषणाओं और योजनाबद्ध चुप्पियों के माध्यम से भी आकार ग्रहण करता रहा। इस संदर्भ में विद्रोह को यदि केवल "राजनीतिक-सैन्य घटना" के रूप में देखा जाए, तो उसका सबसे निर्णायक आयामसूचना का युद्धअदृश्य रह जाता है।

औपनिवेशिक तंत्र ने धीरे-धीरे यह समझ विकसित कर ली थी कि आधुनिक साम्राज्य केवल भू-राजनीतिक नियंत्रण से नहीं चलता, बल्कि वह विमर्शात्मक नियंत्रण पर भी उतना ही निर्भर है। इसी कारण 1857 के बाद जो प्रशासनिक-वैचारिक ढांचा विकसित हुआ, उसने सूचना-प्रवाह को राज्य-सुरक्षा का अभिन्न अंग बना दिया। गैगिंग एक्ट जैसे प्रारंभिक आपातकालीन उपायों से लेकर वर्नाक्युलर प्रेस एक्ट (1878) तक की यात्रा केवल विधिक विकास नहीं थी, बल्कि यह एक ऐसी संरचनात्मक प्रक्रिया थी जिसमें असहमति की भाषाओं को नियंत्रित करने की स्थायी तकनीक विकसित हुई।[70]

इस अध्ययन में सम्मिलित प्राथमिक स्रोतचाहे वे हेविट के प्रेषण हों, अवध और दिल्ली के घोषणापत्र, तात्या टोपे के पत्र, या फिर दिल्ली उर्दू अख़बार जैसी वर्नाक्युलर अभिव्यक्तियाँएक ऐसे ऐतिहासिक क्षण की ओर संकेत करते हैं जहाँ संघर्ष का क्षेत्र केवल भौगोलिक नहीं, बल्कि सूचनात्मक भी था। इस सूचनात्मक क्षेत्र में प्रत्येक पक्ष केवल घटनाएँ नहीं रच रहा था, बल्कि उनके अर्थों का निर्माण भी कर रहा था। परिणामतः विद्रोह एक "घटनाक्रम" नहीं, बल्कि "अर्थ-निर्माण की प्रतिस्पर्धी प्रक्रिया" बन जाता है।

यहाँ यह प्रश्न विशेष रूप से महत्वपूर्ण हो जाता है कि क्या औपनिवेशिक कथा-नियंत्रण कभी पूर्ण और सर्वव्यापी था। उपलब्ध साक्ष्य यह स्पष्ट करते हैं कि ऐसा नियंत्रण कभी पूर्ण नहीं हो सका; किंतु इसकी अपूर्णता स्वयं इसकी शक्ति को कम नहीं करती, बल्कि यह दर्शाती है कि प्रभुत्व का संचालन पूर्णता पर नहीं, बल्कि असमान पहुँच पर आधारित होता है। मार्क्स जैसे समकालीन आलोचनात्मक लेखकों के हस्तक्षेप भी इस तथ्य की पुष्टि करते हैं कि प्रति-कथाएँ मौजूद तो थीं, किंतु उनका प्रसार सीमित और असमान था, जिससे वैश्विक जनमत का बड़ा हिस्सा औपनिवेशिक फ्रेमिंग के भीतर ही निर्मित होता रहा।

टेलीग्राफिक नेटवर्क ने सूचना की गति को नियंत्रित किया, मुद्रण ने उसकी संरचना को आकार दिया, और प्रशासनिक सेंसरशिप ने उसके नैतिक अर्थ को सीमित किया। इस त्रिस्तरीय नियंत्रण व्यवस्था के भीतर जो ऐतिहासिक वास्तविकता निर्मित हुई, वह केवल घटनाओं का रिकॉर्ड नहीं थी, बल्कि एक चयनित दृश्यता का परिणाम थी। इस संदर्भ में कानपुर की घटनाएँ वैश्विक नैतिक चेतना में "बर्बरता" के प्रतीक के रूप में स्थापित हुईं, जबकि दिल्ली और लखनऊ में घटित ब्रिटिश दमन के अनेक प्रसंग या तो "आवश्यक प्रतिशोध" के रूप में वैधता प्राप्त करते रहे या फिर ऐतिहासिक स्मृति से क्रमशः विस्थापित कर दिए गए।

सूचनात्मक सत्ता के इस विन्यास को एक त्रिस्तरीय मॉडल के रूप में समझा जा सकता है

1. गति पर नियंत्रण
2. फ्रेमिंग पर नियंत्रण,
3. स्मृति-निर्माण पर नियंत्रण।

इन तीनों स्तरों के संयुक्त प्रभाव ने यह सुनिश्चित किया कि औपनिवेशिक सत्ता केवल भौतिक रूप से ही नहीं, बल्कि प्रतीकात्मक और ऐतिहासिक स्तर पर भी स्थायित्व प्राप्त करे। यही कारण है कि 1857 का संघर्ष अपने परिणामों से अधिक अपनी स्मृति-राजनीति के लिए निर्णायक बन जाता है।

अंततः, इस शोध का केंद्रीय निष्कर्ष यह है कि 1857 को एक "मीडिया-निर्मित ऐतिहासिक घटना" के रूप में पुनर्पाठित किए बिना उसकी पूर्ण समझ संभव नहीं है। यह विद्रोह केवल सत्ता के विरुद्ध सशस्त्र प्रतिरोध नहीं था, बल्कि यह इस बात की भी लड़ाई थी कि इतिहास को कौन लिखेगा, घटनाओं को कौन अर्थ देगा, और विश्व-जनमत में कौन-सा नैतिक ढांचा प्रभुत्व स्थापित करेगा। इसी अर्थ में साम्राज्य केवल बल-प्रयोग की संरचना नहीं था, बल्कि वह एक सूचनात्मक व्यवस्था भी था, जो यह निर्धारित करती थी कि दुनिया क्या देखे, कैसे समझे और क्या स्मरण करे।

इस प्रकार 1857 की सबसे गहन विरासत उसके सैन्य परिणामों में नहीं, बल्कि उस दीर्घकालिक वैचारिक संघर्ष में निहित है जो उसके अर्थ को लेकर छिड़ा रहा। यह संघर्ष आज के डिजिटल युग तक विस्तारित होता दिखाई देता है, जहाँ सूचना, दृश्यता और कथा-

[70] रणजीत गुहा, Elementary Aspects of Peasant Insurgency in Colonial India (दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1983), पृ. 1-15।

निर्माण पुनः राजनीतिक सत्ता के केंद्रीय उपकरण बन चुके हैं। 1857 हमें यह स्मरण कराता है कि इतिहास केवल घटित नहीं होतावह निर्मित किया जाता है, और उस निर्माण की प्रक्रिया ही सत्ता का सबसे सूक्ष्म, किंतु सबसे प्रभावी रूप होती है।

संदर्भ सूची

1. प्राथमिक स्रोत: समाचार पत्र (Contemporary Newspapers)
2. बॉम्बे टाइम्स: 12 जनवरी 1857; 19 जनवरी 1857; 12 मई 1857; 18 मई 1857; 27 मई 1857।
3. केप आर्गस: 8 अगस्त 1857; 26 अगस्त 1857।
4. दिल्ली उर्दू अख़बार: 17 मई 1857; 21–24 मई 1857; 12 जुलाई 1857।
5. फ्रेंड ऑफ इंडिया: 28 मई 1857।
6. होमवर्ड मेल फ्रॉम इंडिया, चाइना, एंड द ईस्ट: 1 जनवरी 1857; 13 नवंबर 1858।
7. इलस्ट्रेटेड लंदन न्यूज़: 22 अगस्त 1857।
8. जाम-ए-जमशेद: जून–अगस्त 1857।
9. जर्नल डे डेबैट्स: 22 अगस्त 1857।
10. एल'एस्टाफेट: 15 अगस्त 1857।
11. मेलबर्न आर्गस: 7 जुलाई 1857; 8 जुलाई 1857।
12. न्यूयॉर्क डेली टाइम्स: 6 जुलाई 1857; 8 जुलाई 1857।
13. पयाम-ए-आज़ादी: फरवरी–सितंबर 1857 (ब्रिटिश लाइब्रेरी प्रतियाँ)।
14. पंच: 22 अगस्त 1857; सितंबर 1857।
15. रेनॉल्ड्स न्यूज़पेपर: 11 अक्टूबर 1857।
16. रुस्कीय वेस्टनिक: अक्टूबर 1857।
17. सादिक-उल-अखबार: 1857 (सप्रे संग्रहालय, भोपाल)।
18. द हिंदू पैट्रियट: 3 अक्टूबर 1857; 17 अक्टूबर 1857।
19. द नेशन: 12 सितंबर 1857।
20. द टाइम्स: 6 जून 1857; 30 जून 1857।
21. तिलिस्म-ए-लखनऊ: 1857 (सप्रे संग्रहालय, भोपाल)।
22. टोरंटो वीकली मैसेज: 15 जनवरी 1858।
23. उदन्त मार्तण्ड: 30 मई 1826।
24. वोल्क्स-ज़ितुंग: 10 सितंबर 1857।
25. वाशिंगटन यूनियन: 11 जुलाई 1857।
26. हेविट, मेजर-जनरल डब्ल्यू. एच.: 11 मई 1857 का पत्र।
27. गुलाब (संदेशवाहक): बहादुर शाह द्वितीय मुक़दमा, 1858 की गवाही।
28. लखनऊ घोषणापत्र: 29 मई 1857 (हिंदी/उर्दू/फारसी)।
29. के, जे. डब्ल्यू.: Sepoy War in India, 1876।
30. इंगलिस, जे. एफ. डी.: Narratives of Occurrences at Bareilly, 1858।
31. कूपर, जॉर्ज: 1 दिसंबर 1857 का पत्र।
32. खान बहादुर: मार्च 1858 का घोषणापत्र।
33. तात्या टोपे: 2 जनवरी 1858 का पत्र।
34. वज़ीर खान: 1859 की गवाही।
35. ग़ालिब, मिर्ज़ा: दस्तंबू (ऑक्सफोर्ड अनुवाद संस्करण, 2003)।
36. ज़हीर देहलवी: दास्तान-ए-ग़दर (पेंग्विन, 2017)।
37. ग्रिफिथ्स, सी. जे.: A Narrative of the Siege of Delhi, 1912।
38. मुइर, सर विलियम: खुफिया रिपोर्ट, 31 अक्टूबर 1857।
39. कूपर, फ्रेडरिक: अजनाला घटनाओं पर विवरण।
40. रसेल, विलियम हॉवर्ड: My Diary in India, 1860।
41. मार्क्स एवं एंगेल्स: The First Indian War of Independence, 1959।
42. निज़ामी, ख्वाजा हसन: ग़दर देहली के अख़बार, 1923।
43. भारतीय राष्ट्रीय अभिलेखागार (NAI): गृह विभाग रिकॉर्ड (1857–1858)।
44. NAI: प्रेस एक्ट XV (13 जून 1857)।
45. NAI: नेटिव न्यूज़पेपर रिपोर्ट्स (1883, 1905, 1906)।
46. ब्रिटिश लाइब्रेरी: India Office Records L/PJ/3/120।
47. ICHR लाइब्रेरी: 1857 Revisited Based on Persian and Urdu Documents (2007)।
48. पंजाब म्यूटिनी रिपोर्ट (लाहौर, 1858)।
49. सेडिशन कमिटी रिपोर्ट (1918)।
50. सप्रे संग्रहालय, भोपाल: ऐतिहासिक समाचार पत्र संग्रह।
51. एंडरसन, बेनेडिक्ट: Imagined Communities (2006)।
52. बेंडर, जिल सी.: The 1857 Indian Uprising and the British Empire (2016)।
53. चक्रवर्ती, गौतम: The Indian Mutiny and the British Imagination (2004)।
54. डेलरिम्पल, विलियम: The Last Mughal (2006)।
55. डेविड, शाऊल: The Indian Mutiny 1857 (2002)।
56. फूको, मिशेल: Power/Knowledge (1980)।
57. गुहा, रणजीत: Elementary Aspects of Peasant Insurgency (1983)।
58. हेबरमास, जुर्गन: The Structural Transformation of the Public Sphere (1989)।
59. मजूमदार, आर. सी.: The Sepoy Mutiny and the Revolt of 1857 (1957)।
60. मेटकाफ, थॉमस आर.: The Aftermath of Revolt (1965)।
61. मुखर्जी, रुद्रांशु: Awadh in Revolt (1984)।
62. स्टोक्स, एरिक: The Peasant and the Raj (1986)।
63. वैगनर, किम ए.: The Great Fear of 1857 (2010)।
64. सावरकर, वी. डी.: The Indian War of Independence of 1857 (1909)।
65. V. डिजिटल अभिलेखागार (Digital Archives)
66. अभिलेख पटल: https://abhilekhpatal.gov.in
67. British Newspaper Archive: https://www.britishnewspaperarchive.co.uk
68. Indian Culture Portal: https://www.indianculture.gov.in
69. Trove (Australia): https://trove.nla.gov.au
70. Papers Past (New Zealand): https://paperspast.natlib.govt.nz

सप्रे संग्रहालय डिजिटल संग्रह (भोपाल)